जागृतिकार के साथ वार्तालाप

आशीष पत्र

MEHERAZAD

August 27, 2003

Sri Sathish Chandra Srivastava
C-2045/4, Indira Nagar,
Lucknow (U.P.) 226016

Dear friend Satish Chandra Srivastava

Jai Baba!

I deeply appreciate that you have completed the work of translating "CONVERSATIONS WITH THE AWAKENER" into Hindi. This seems to be a Baba Coincidence.

Since you last saw me, I have not been feeling well and I am not able to read anything, nor sometimes even remember what is read out to me! Therefore, I am very sorry to express my inability to go over the manuscript or even write a short preface for it. (Nor do I think my brother is competent to suggest changes or edit your version). However, I hereby happily give you may permission to publish your Hindi version of CONVERSATIONS WITH THE AWAKENER when and if it is conveniently possible for you. May Beloved BABA guide you to do what is practical. The two kind girls join me in sending you and your dear friend best wishes and much love. May Beloved Baba awaken your hearts to His presence more and more and may His smile, ever-radiating from the Samadhi, fill your hearts with His ever-fresh fragrance.

In His Care

Cc: Madhav Natu

जागृतिकार के साथ वार्तालाप

बाल नाटू

अनुवाद

सतीश चन्द्र श्रीवास्तव
लखनऊ, 2003

मेहेर बाबा कॉस्मिक फाउन्डेशन
198-A, बिषय रॉकी स्ट्रीट,
फैजाबाद रोड़, लखनऊ द्वारा प्रकाशित
फोन- 0522-2370433
2004

अनुवादक की ओर से ....

जब दो लोगों की बातचीत होती है तो भलेमानुसों के लिए उनकी बातों की टोह लेने का प्रयास करना अभद्रता है। लेकिन यही बातचीत यदि बहुजन हिताय बहुजन सुखाय प्रकाशित कर दिया जाए तो वह प्लेटों और अरस्तू का ''डायलॉग'' या ''यम नचिकेता संवाद'' जैसा ग्राह्य हो जाता है, विशेषतया तब, जब बातचीत में मानवीय संवेदनाओं का विषय प्रभावी हो! प्रस्तुत पुस्तक की यही कोटि है। ;यद्यपि ऐसी किसी कोटि निर्धारण के लिए मैं अधिकृत नहीं हूँद्ध ! अंग्रजी पुस्तक पढ़ने के लिए श्री समरेन्द्र नाथ सिंह ;समीर दिलजानद्ध ने खरीदकर और मात्र दो-तीन अध्याय पढ़ने के बाद ही अनुवाद करने के प्रयास हेतु मुझसे कहा, इसके लिए प्रेरित और प्रोत्साहित भी करते रहे। वें पुस्तक को मूल अंग्रजी में पढ़कर अविभूत भी थे, लेकिन अनजाने में वे मुझको उपकृत करने के तथ्य से अनभिज्ञ थे। अनुवाद पूर्ण कर लेने के बाद जैसी कृत कृत्यता की अनुभूति मुझे हुई उसका उन्हें आभास भी न होगा।

मूल अंग्रेजी पुस्तक की शैली रेखाचित्तात्मक एवं काव्यात्मक है, इसलिए इसके अनुवाद में जान बूझकर तत्सम् शब्दों का प्रयोग, अंग्रजी के समान वाक्य-विन्यास, इस कारण करना अनिवार्य प्रतीत हुआ जिससे लेखक की मूल भावना ही पाठक तक पहुँच सके और विषय-वस्तु की आत्मा भी प्रभावित न हो।

पाण्डुलिपि का पहला प्रूफ आया। डॉ0 मेहेर ज्योति दीदी ने क्लिष्ट हिन्दी को सहज बनाने का सुझाव दिया, श्री अशोक कुमार श्रीवास्तव 'मनीष' ने श्रमसाध्य प्रूफ-रीडिंग किया। फिर नए सिरे से पुनावृत्ति करके समाप्त कर एक बहुत पुरानी बात याद आ गईः

कहते हैं कि एक बार मिर्जा 'गालिब' ने अपने समकालीन 'मोमिन' साहब से कहा था कि, ''जनाब 'मोमिन', यदि आप सिर्फ एक अश्आर ;शेरद्ध मेरे नाम कर दें, तो उसके बदले मैं आपके नाम पूरा 'दीवान' कर दूँगा''। उस शेर की पक्तियां पिछले चालीस साल से मेरी आँखों के सामने आती-जाती रहीं, अपने भरसक अर्थ भी लगाता रहा, पर न जान सका था कि उस सादे और सुन्दर शेर में

ऐसा क्या था कि उसके सामने पूरा 'दीवान-ए-गालिब' हल्का जान पड़ा। 'मोमिन' के उस शेर के अर्थ तथा गालिब द्वारा उसका सटीक मूल्यांकन ''जागृतिकार से वार्तालाप'' के अन्तिम प्रस्तुतिकरण के माध्यम से समझ में आ गया। वह शेर है :

''तुम मेरे पास होते हो गोया,
जब कोई दूसरा नहीं होता।''

लखनऊ — सतीश चन्द्र श्रीवास्तव
दीपावली, 2003

पुनश्चः

पुस्तक का लेखक दिनांक 7 अक्टूबर 2003 को अपना भौतिक शरीर त्यागकर सूक्ष्म-देह से सचमुच अपने जागृतिकार से वार्तालाप करने धरती से चला गया

प्रकाशक की ओर से

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक बालनाटू ने, जो एक गहरे ईश्वर भक्त रहे, यह पुस्तक ''जागृतिकार से वार्तालाप'' ईश्वर के नाम लिखी है। पुस्तक के प्रकाशक श्री समरेन्द्र नाथ सिंह शारीरिक रूप से असहाय होते हुए भी ईश्वर की असीम कृपा से ईश्वर के इस कार्य मे निमित्त बने हैं। और इस पुस्तक का हिन्दी अनुवाद ईश्वर भक्तों तक पहुँचा रहे हैं जिससे ज्यादा से ज्यादा लोग इसे पढ़कर उस कृपानिधान प्रभु की असीम कृपा को प्राप्त कर सकें। हम यह नहीं जान पाते कि असहाय होने की स्थिति में तुम्हारे स्मरण का सहारा कितना महत्वपूर्ण है।

हाँलाकि लेखक ने यह पुस्तक ईश्वर के नाम लिखी है लेकिन प्रकाश ;समीर 'दिलजान'द्ध ने यह धृष्टता कर दी है कि उन्हें ;ईश्वर कोद्ध ''मेहेर बाबा'' समझ लिया है, इसलिए पुस्तक के मुखपृष्ठ पर 'मेहेर बाबा की समाधि' को तस्वीर और अंतिम पृष्ठ पर 'मेहेर बाबा' की तस्वीर दे दी है।

वैसे प्रत्येक जन चाहे वह किसी भी धर्म को मानने वाला हो, अपने धर्मानुसार ही अपने इष्ट या अराध्य को स्मरण करता है और उसे कोई नाम देता है जैसे- राम, कृष्ण, ईसा मसीह, अल्लाह या अन्य कुछ भी। लेकिन इस पुस्तक की यही विशेषता है कि इसे कोई भी व्यक्ति अपने इष्ट की प्रार्थना स्वरूप पढ़ सकता है।

जय मेहर बाबा

समर्पण

जागृतिकार के साथ - वार्तालाप

समर्पित है

समस्त हृदयों के जागृतिकार! तुम्हें
तथा उन सबको,
जो सम्पूर्ण हृदय से तथा निष्ठा से
तुम्हारी खोज में प्रवृत्त हैं।
परा शब्द- परा मौन
जागृत सचेतनता- तुम हो,
अपनी उपस्थिति के द्वारा
सृष्टि का संतुलन करते हुए
यह भेंट स्वीकार करो।

पूर्व कथ्य

क्या यें 'वार्तालाप' सच है या झूठ, वास्तविक है या काल्पनिक! भला मैं क्या कहूँ?

मेरे लिए तो ये ईश्वर की सहज उपस्थिति के अत्यंत दैदीप्यमान बिंब है- मेरे ह्रदय के दपर्ण मे। क्या ऐसा संभव नहीं?

एक बात तो तय है - इन कथोपकथनों ने मेरे अस्तित्व को अनायास ही अत्यंत हर्ष से भर दिया और इसी विहव्लता ने मुझे इसे दूसरों के साथ बाँटने का साहस दिया है।

उन प्रिय मित्रों को, जिन्होनें इस अभियान में प्रेम और धैर्य से मुझे सहयोग दिया, उन्हें मेरा हार्दिक और भवनिष्ठ धन्यवाद!

अब यह पाठकों पर निर्भर है कि चाहे इनमें निहित हर्ष के सहभागी हों या इन कथोपकथनों की खिल्ली उडाएं! कुछ भी हो यह मनोरंजक तो होना ही चाहिए।

- लेखक।

अनुक्रमणिका

आशीष पत्र

आनुवादक की ओर से

समर्पण

पूर्व कथ्य

अनुक्रमणिका

1. एक सरल उपाय
2. क्रीड़ा! कैसी विलक्षण क्रीड़ा
3. आँख हमारी अश्रु तुम्हारे
4. जब मैंने खोजबीन की .....
5. मेरा मित्र-वह वृक्ष
6. चुपचाप आगमन, एकाएक प्रस्थान
7. केवल एक अश्रुबिंदु
8. उल्कापातीय विधि)
9. कृतज्ञता का सतत प्रवाह
10. जलधि बना समुद्र तट)
11. जागो-जागो
12. कल्पवृक्ष ;इच्छा पूर्ण करने वाला वृक्षद्ध
13. मित्रवत् और ज्वालावत् भी
14. तुम्हारे चिन्हः मेरे चिन्ह स्तम्भ
15. छवियां मिटाना
16. भय से भयभीत न हो
17. ''किसी और दिन''
18. एकमेव जाग्रत के स्वप्न मे स्वप्न
19. कैसी असंभव प्रत्याशा
20. अब कोई अंतर नहीं पड़ता

21. ''मुझे प्रसन्न करो''
22. उबासी तुम्हारी मुस्कान में घुल जाती है।
23. ईश्वर इच्छा
24. तुम्हारा अनुसरण, सदा प्रवाहित होना है
25. नव वर्ष उपहारः असली अँगूठी
26. मेरा अध्ययन करो
27. तुम्हारा कोई नाम नही

एक सरल उपाय

मैंने तुमसे अपने अंधकारमय-क्षण में पूछा, ''तुम कितना बड़ा पाप क्षमा कर सकते हो?''

तुमने कोमल प्रेमालिप्त वाणी में कहा, ''आज तक किसी ने इतना बड़ा पाप किया ही नहीं जिसे मैं क्षमा न कर सकूँ।'' ''तो फिर'', मैंने ठहरते हुए कहा ''तुम्हारी कृपा दृष्टि के लिए किसी को कितना पुण्य-अर्जन आवायश्क है?''

''सभी मनुष्यों के सभी अर्जित पुण्य मेरी कृपा लेशमात्र प्राप्त करने के लिए काफी नही।'' उत्तर प्रकम्पित हुआ। ''तब फिर कैसे आशा करूँ कि मैं कभी भी तुम्हें देख सकूँगा?'' निराशा से अवरू(स्वर में मैंने कहा।

''क्या!'' सौहादर्य से परिपूर्ण हास्य स्वर मैंने सुना,

''मूर्ख न बनो।'' इसका उपाय तो सरल है।''

मैं आहत और आश्चर्यचिकत हो उठा तथा साहस करके पूछा, 'सरल' से तुम्हारा क्या तात्पर्य है? क्या मेरे साथ विनोद कर रहे हो?''

''नहीं, सचमुच यह अति सरल है।''

इससे व्याकुल हो मेरा अन्तर रो पड़ा, ''मैं तुम्हारे कथन का अर्थ नहीं समझा और मुझे आश्चर्य भी है। आखिर यह आवाज कहां से आ रही है?''

उत्तर मिला, 'मेरे बच्चे यह तुम्हारे ही अन्तर की उन अथाह गहराइयों से आ रही है जहां तुम नहीं हो, लेकिन मैं हूँ। अब जाँऊ?''

''कृपया मुझे इस भ्रम और संताप की स्थिति में अकेला छोड़कर मत जाओ। तुमने कहा कि यह सरल है, लेकिन वह कौन सा रहस्य है जो इस 'सरलता' के प्रति मेरा ह्रदय खोल सके?''

तुम्हारी आवाज गुरू और गंभीर होती गई, ''रहस्य हैः पाप के भविष्य में सोचो ही क्यों? पुण्य का भी क्यों सोचना?

बस मेरे विषय में ही सोचो। क्या मैं ही एकमात्र अंतरंग, एकमात्र सर्वाधिक सह्रदय तुम्हारे भीतर उपस्थित नही हूँ?

अलविदा।

इन शब्दों की आवाज मेरे अन्तर में विलुप्त हो गई। यह कृपालु आश्वस्ति

मेरे कानों में, नहीं, मेरे सम्पूर्ण अस्तित्व में वासित हैः

कितना सरल उपाय!

कितना कठिन इसे जीना!

क्रीड़ा! कैसी विलक्षण क्रीड़ा

मेरे लिए तुम मूर्तिमान प्रेम और शांति हो। फलस्वरूप मैंने समझा कि चूँकि तुमने दया करके मुझे स्वीकारा है, अतः मेरी जीवन धारा निरंतर उल्लास की तरंग के समान बहती रहेगी।

लेकिन आह! लगता है मैं भ्रम के समुद्र में बहता हुआ भटक गया हूँ। परन्तु, यह भी सही है जब-जब मैं भ्रम के कारण निराशा के भँवर में फँसा हूँ तब-तब किसी अज्ञात छोर से तुमने मुझे किसी द्वीप पर तनिक विश्राम के लिए खींच लिया है। इसके लिए धन्यवाद! परन्तु मेरा तनिक विश्राम बार-बार छीन लेना, क्या तुम्हारे लिए आवश्यक है?

जब मैंने तुम्हें पहली बार देखा तो समझा अब मेरा लक्ष्य निर्धारित हो गया है और यात्रा सुरक्षित हो गई है।

लेकिन यह क्या है? कितनी ही बार मैं अनिश्चय की स्थिति में यहां तक कि सामान्य दिनचर्या की सामान्य समस्याओं को सुलझाते हुए भी फँसा हूँ।

लेकिन जब मैं सचमुच असहाय हो परेशान हो उठता हूँ तो कोई न कोई बात मुझे झंझावत के बीच से सुरक्षित स्थान पर ला देती है और मैं सीधा तुम्हारी ओर जाने वाले मार्ग को देख लेता हूँ।

इस पर भी, थोड़ी देर बाद ही, एक बार पुनः, उन्हीं अनिर्णय की हाहाकारी हवाओं में जकड़ जाता हूँ।

एक बार मैंने तुम्हारे किसी प्रेमी को उसके साथ तुम्हारी क्रीड़ा के बारे में एक गीत गाते सुना था। गीत की अंतिम पंक्तियाँ प्रायः मेरे मन में गूँज उठती है :

''तुम्हारे साथ इस खेल में, हर बार मैं जीत के निकट होता हूँ
तुम साधारण सी चाल चलते हो और मुझे मात दे देते हो।
यदि पहले ही मालूम होता तो शायद,
तुम्हारे साथ ऐसे खेल खेलने का कदापि साहसन करता।''

तुम्हारे प्रेमी का तुम्हारे प्रति यह शिकवा है या कसीदा ;प्रशंसाद्ध? अभी तक यह मेरे लिए पहेली है।

क्या अहंकार कुचलने की ये तुम्हारी विधियाँ है? मैं भी कभी धीर, गंभीर,

दृढ मनः स्थितिवान और सक्षम थाऋ जब यह सब हो गया तभी तुमने मेरे ऊपर वह दृष्टि डाली जिससे तुमने मेरा जीवन अपने अधिकार में कर लिया। इन खेलों में चाहे, बाजी ऊँची हो या कौड़ी के मोल की, 'जोकर' सदा तुम्हारे ही हाथ में रहता है।

कहते हुए हिचकिचाहट तो होती है, पर कभी-कभी सोचता हूँ कि यदि तुमसे मिला ही न होता तो अच्छा था। अरे नहीं, पहले तुम्हारे बारे में सुना होता तो बहुत पहले ही तुम्हारा अभिवादन करने दौड़ पड़ता। तुम्हारा खेल अद्वितीय है।

चाहे मैं भंवर में रहूँ, चक्रवात में पडूँ या दलदल में फँसू, सब में इतना आनन्द है जो कहने को बाध्य करता है किः

या तो मेरी सहायता करो कि मैं तुम्हारे विधान के
अनुसार रह सँकू
अथवा तुम्हें मेरा वहन करना होगा,
एक आतुर, भयभीत, कमजोर काया का।

आँख हमारी, अश्रु तुम्हारे

संकट की अवधि थी- एक लंबी अवधि, जिसने मेरी सारी शक्ति चूस ली थी। एक क्षण, जब जीवन और मृत्यु की दूरी समान प्रतीत हो रही थी, मैं अत्यन्त भयभीत था। मैं रोक न सका और ह्रदय का बांध टूट गया - मैं आँसू बहाता रहा। मुझे लगा कि जैसे घुप अंधेरे मे किसी पतली कसी हुई रस्सी पर चलना पड़ रहा हो।

ह्रदय से जानता था कि तुमने मुझे स्वीकार कर लिया है लेकिन मैं उतना साहसी व्यक्ति नही हूँ। क्या मुझे स्वीकारना चाहिए? हाँ, मैं भयभीत कमजोर हूँ।

लेकिन तुम, ईश-पुरूष, जय हो तुम्हारी। तुम सबके लिए हो, चाहे कमजोर या मजबूत।

उस समयावधि में, डर से घबराकर, तुम्हारी इच्छा के सामने नतमस्तक होने के बजाए, मैंने अपनी इच्छाएं तुम पर लादनी प्रारम्भ कर दीं। यद्यपि मैं जानता था कि मेरे जीवन की घटनाओं के द्वारा तुम मुझे अपने निकट से निकटतर आने को सर्वोत्तम अवसर प्रदान कर रहे हो तथापि तुम्हारे प्यार के बदले में मेरी प्रतिक्रिया घटिया और सतही थी। इतना मूर्ख था कि अपनी पीड़ा के वशीभूत होकर मैं तुम्हारे 'ईश्वरत्व' मे कभी-कभी संदेह तक कर बैठता था। इस पर भी मेरी निजता ;मेरे साथद्ध की तुम्हारी स्वीकृति बिना शर्त थी।

कई अवसरों पर मैं स-प्रयास प्रफुल्लित मुखमुद्रा में दूसरों से कहता फिरता हूँ, ''मैं ठीक हूँ, मैं ठीक हूँ।'' लेकिन यह अधिक दिन तक न चला! जैसे ही एकान्त में होता, आँखों से अश्रु बहकर कपोल भिगोते।

मैं (शर्मसार और बेबस होता, अपनी हथेलियों में चेहरा छुपाकर सिसकियां लेता, जब मैंने अश्रु पौंछना चाहा तो
आश्चर्य मेरी प्रतीक्षा कर रहा था।

उन अश्रुओं का शीतल स्पर्श मुझे गहरी अनुभूति दे गया कि वे मेरे नहीं थे, अश्रु मेरे नहीं थे। वे तुम्हारे थे-तुम्हारे प्यार के। कितनी सह्रदयता।

रूंधे गले को मैं बुदबुदाया ''खेद है।'' मैंने अनुभव किया कि उन शीतल अश्रुओं के माध्यम से तुम मुझसे पूछ रहे हो, ''क्या मेरे ऊपर भरोसा नहीं?'' किसी

तरह स-प्रयास मैंने कहा ''कृपया क्षमा करो, मैं इन्हें रोक न सका।'' खेद हुआ कि मैं तुम्हारे कष्ट का कारण बना। लेकिन उसी क्षण मेरा भय ऐसा विलीन हुआ जैसे तेज चमचमाते सूर्य के सामने धुंध और मैं एकदम सामान्य हो गया। उन पवित्र अश्रुओं ने मेरे मरणासन्न भाव को प्रफुल्लित कर दिया और मेरा सम्पूर्ण अस्तित्व आश्चर्य से मानो नृत्य कर उठा।

इससे बोध हुआ कि जब भी, कभी भी मैं रोता हूँ तो आँखें मेरी होती हैं, पर अश्रु तुम्हारे।

जब मैंने खोजबीन की .....

- वे कहते हैः मुझे तुमसे कोई वस्तु नहीं मांगनी चाहिए।
- सच कँहू, मैं अनुभव करता हूँः मुझे तुमसे हर वस्तु मांगनी चाहिए।
- वे प्रतिर्तक देते हैः तुम सर्वज्ञ हो, इसलिए मांगने की क्या जरूरत।
- हाँ वें ठीक है परन्तु उसी सर्वज्ञता के प्रकाश में मेरा कहना है कि मैं मांगू तो क्या नुकसान ।
- एक बार तुमने अपने साहसी प्रेमी से कहा था, ''जो मुझसे केवल मेरा प्रेम मांगता है, वही सर्वोत्तम की मांग करता है,'' सच है।
- लेकिन चूँकि मैं उतना साहसी नहीं हूँ इसलिए यदि तुम्हारी गहराइयों की खोज करने की लालसा का दमन नहीं कर सकता तो क्या हुआ?
- बेशक, अपनी वैश्विक समझ से तुम मांग स्वीकार करो या फिर मना कर सकते हो।
- लेकिन कृपा करके जो मैं ठीक समझूं उसे मांगने की मेरी स्वतन्त्रता को मत छीनना।
- कहकर न मांगना, फिर भी मन में चाह बनाए रखना, मुझे तो पाखण्ड लगता है।
- आखिर जब स्थिति चरम सीमा पर पहुँच जाए तो निदान के लिए किसकी ओर देखूँ?
- यदि स्पष्ट न कह दिया जाए तो कह देने की इच्छा तो अवश्य ही मन में छिपी रहेगी।
- इसलिए मुझे अपने पत्ते ;मांगद्ध - कामनाओं की सूची और चित्र-तुम अपनी मेज पर रखने की स्वीकृति क्यों नहीं देते?
- क्या तुम्हारे लिए मुखरित शब्द अनुच्चारित शब्दों से अधिक महत्व के है।
- निःसंदेह, इस प्रकार मैं तुम्हारे गले के हार का मोती तो न बन सकूँगा।
- लेकिन तुम्हारे चरण धूलि के कण बनना भी कम तो नहीं।
- निःसंदेह साहसी प्रमियों के लिए तुम दिव्य-प्रियतम हो।
- मुझ जैसे अकिचंन के लिए तुम अत्यंत क्षमाशील हो।

मेरा मित्रः वह वृक्ष

पहाड़ी की जड़ पर स्थित वह विशाल, अकेला खड़ा, वृक्ष मुझे पसन्द था। इसके पीछे, खड़ी चढ़ाई, इतनी कठिन थी कि उधर से होकर पहाड़ी की चोटी पर पहुँचने का किसी ने प्रयास नहीं किया था। इसलिए एकान्त के क्षणों में तुम्हे याद करने के लिए वह मेरा 'शान्त-स्थल' बन गया।

कुछ दिनों से मैं सूर्योदय के समय, प्रकृति के सौन्दर्य को निहारते हुए, वहां बैठा करता था। वे दिन मेरे लिए बहुत आनन्द के दिन थे जब मेरी चेतना अट्टहास करती थी और देह विश्राम पाता था, कभी वह वृक्ष मुझे उत्साह देता और कभी मुस्कुराता सा प्रतीत होता।

जैसे-जैसे हमारा परिचय प्रगाढ़ होता गया वैसे-वैसे मेरा मित्र ;वृक्षद्ध जीवन के सत्यों का मूक उद्घाटन करने लगा। दूर तक फैली अपनी जड़ों के माध्यम से इसने मुझे संतुलित और केन्द्रस्थ होने की कला का बोध करायाॠ अपने तने के माध्यम से बदलती)तुओं में दृढ़ रहने का गुणॠ समीर ;हवाद्ध के प्रति बिना प्रतिरोध नृत्य करने वाली अपनी असंख्य कोमल पत्तियों से मुझे तुम्हारी इच्छा का सौन्दर्य-बोध हुआ।

जब कभी मैं वृक्ष के पास पहुँचता, लगता है वह मेरा स्वागत कर रहा है और जब लौटने लगता तो प्रेमपूर्वक विदाई दे रहा है।

तुम, जो जीवन के वृक्ष हो, के प्रति मैं कृतज्ञ था कि तुमने मुझे ऐसा मित्र ;वृक्षद्ध उपलब्ध कराया। तब वह दिन आया-शीत)तु का एक दिन, जब मित्र मंडली से विदा के समय एक साधारण सी बात पर मेरी गर्मागरम बहस हो गई। वे अपने तर्कों को उन विभिन्न ''अधिकृत'' स्रोतों पर आधारित कर रहे थे जिनकी विश्वसनीयता मुझे स्वीकार नहीं थी। उन्होनें मुझे घमण्डी कहा और मैंने उन पर विमूढ़ होने का आरोप लगाया। हम लगभग शत्रुता की सीमा तक पहुँच कर अलग हुए। यह मानना होगा कि मेरे हृदय में इन सब बातों को लेकर इतनी अधिक पीड़ा थी कि मैं धैर्य खो बैठा था।

और जबकि अभी दोपहर का समय था, फिर भी मैं अपने मित्र, उस वृक्ष के पास अपनी क्षुब्ध मनः स्थिति को शांत करने भाग कर पहुँचा। उस उन्मुक्त

वातावरण में उसके तने की टेक लेकर मैंने धूप की गर्मी और छाया की शीतलता के सुखद समागम को महसूस कर अपने हृदय को तृप्त होता पाया।

मैंने स्वयं से कहा ''गर्मी और शीतलता का पूर्ण समन्वय।'' नीले आकाश के विस्तार और मन को खुशी से भर देने वाली हवा ने मेरे अन्दर के गुस्से को शांत किया और मैं पूर्ण स्वस्थता का अनुभव करने लगा। तुम्हारी सहृदयता के सौन्दर्य में खोया मैं ऊपर की ओर निहार रहा था कि किस प्रकार ध्वनि और गति के संगीत पर कोमल पत्तियां नृत्य कर रही थी। जो देखा उससे आश्चर्यचकित रह गयाः प्रत्येक पत्ती, पूरी स्वतंत्रता के साथ अपनी पड़ोसी पत्ती से मिलती। अभिवादन करती, फिर पूर्ण गरिमा के साथ और आनन्दपूर्वक एक-दूसरे से अलग हो जाती। उनके ऊपर सूर्य की किरणें नृत्य करती और उनकी कान्ति के माध्यम से मैंने तुम्हें नीचे उतरते देखा और अपने सामने खड़ा पाया।

मेरे हर्ष की सीमा न रही, ''तुम यहां हो, यहां तुम हो'', खुशी के मारे अपना हृदय उड़ेलने को मैं चीखा। लेकिन तुमने मुझसे कहा, ''फिलहाल, मेरे पास कुछ सुनने के लिए समय नहीं है।''

''तो तुम आए ही क्यो?'' मैंने पूछा।

''जो तुम्हें अवश्य जानना चाहिए वही संक्षेप में बताने के लिए आया। जो मैं कहता हूँ उसे भली-भाँति सोचो, परन्तु उसे तब तक स्वीकार न करो जब तक कि वह तुम्हारी चेतना का अभिन्न भाग न बन जाए।''

''तुम आज बड़े दार्शनिक क्यों हो रहे हो?'' ''मेरे लिए तो 'दार्शनिक' अथवा 'सांसारिक', तर्क संगत या 'तर्कहीन' जैसे कोई विषय भेद नहीं है। ये सभी वस्तुएं सापेक्ष है। मुझमें डूबने के लिए जीवन को इन सभी स्थितियों से होकर गुज़रना आवश्यक है।''

''ठीक'', मैंने कहा, ''यदि तुम्हें जल्दी है तो फिर मैं सशरीर श्रवणेन्द्रिय बनकर सुनने को तैयार हूँ''। तुम मुस्कुराए और कहा ''दूसरों के मत से अविचलित रहो और अपने मत को स्वीकार कर लेने की दूसरों से अपेक्षा मत करो।

''विद्वतापूर्ण वचनों के वशीभूत मत होओॠ अपने अर्न्तमन मे मेरी मौन स्नेहमयी उपस्थिति से विनम्र प्रत्युत्तर जागृत होने दो। इससे तुम्हारा वह पथ प्रदर्शित होगा जो मुझ तक पहुँचता है। तब तुम किसी बात से रूष्ट नहीं होगे और

न अपना मानसिक संतुलन खो सकोगे''।

मैं अभी और कुछ सुनने को उत्सुक था, लेकिन दूसरे ही संगीतमय अवरोध के साथ तुम नृत्य करती पत्तियों में एक बार फिर विलीन हो गए।

मैं ठगा सा रह गया। क्या यह कोई भ्रम था? नहीं, कभी नहीं। अन्यथा मेरे आस पास और मेरा अर्न्तमन तक क्यों तुम्हारे कोमल प्रेम से आवेशित हो उठा।

मैं यह सोचकर भावुक हो उठा कि मेरे साथ उस सुबह जो कुछ हुआ था तुम केवल उसके साक्षी ही नहीं थे, परन्तु करूणावश मुझे परामर्श भी देने आए थे।

उस दिन, जब मैंने अपने प्रिय मित्र ;वृक्षद्ध से विदा लिया जो अपनी स्मृति मे तुम्हारा अमूल्य कथन और तुम्हारे साथ व्यतीत उन क्षणों की अनुभूमि को भी ले गया।

तभी से उस वृक्ष से मेरी मित्रता और गहरी और अंतरंग हो गई। मैंने इसकी शाखों के नीचे, इसकी पत्तियों को नाचते देखते घंटों बिताए है। परन्तु तुम फिर नहीं आए। क्या मुझे पुनः कोई महान भूल करनी होगी तुम्हें यहां निमंत्रित करने के लिए?

क्या एक बार फिर मुझे अपना सौजन्य खोना होगा? तुम्हारे श्रवण-रन्ध्रों तक पहुँचने के लिए?

चुपचाप आगमनः- एकाएक प्रस्थान
;1द्ध

नवस्फूर्तिदायक आराम की नींद से मैं जगा। याद नहीं अभी रात ही थी या ब्रह्ममुहूर्त! मैं गर्माया, बिस्तर में सुरक्षित था जबकि खिड़की के चौखटों से रिमझिम वर्षा टकरा रही थीऋ धीमी रोशनी में एक लैंप मेज पर जल रहा था। दोनों दुनिया-कमरे से बाहर का अशान्त और कमरे के भीतर सुरक्षित परिक्षेत्र में कितना विरोधाभास था। जब हृदय हर्ष और आभार से भरा छलकने को हो आया, तब बिस्तर पर अकर्मण्य सा बैठा न रह सका। तब मैं प्रार्थना के कुछ शब्द लिखने अपनी मेज पर बैठ गया।

आनन्द मिश्रित अपने भय को दूर करने के उपक्रम में तुम्हारे वैभव की गरिमा कम करने के निजी प्रयास के कारण था कि तुम्हारी उपस्थिति से बाध्य होकर- नहीं जानता कि किस कारण कुछ लिखने की प्रेरणा हुई थी। लेकिन जैसे ही लिखने को उद्यत हुआ, दरवाजा खटखटाने की आवाज हुई। झुंझलाहट के साथ आश्चर्य भी हुआ कि इस समय यह भला कौन है जो व्यवधान डालने आ पहुँचा। मैंने खटखटाहट की अवहेलना की और लिखता रहा। प्रथम वाक्य पूर्ण होते ही दूसरी बार दरवाजा खटका। लिखने की रौ में व्यवधान हुआ और मेरी झुंझलाहट बढ़ गई, लेकिन मैं लिखता रहा, उठा नहीं। मैं लिखने में लीन था कि कुछ क्षणों में ही तीसरी बार दरवाजा खटका। होठों पर तीखे शब्द संजोए मैं दरवाजा खोलने को उठा।

कैसा आश्चर्य! वर्षा में भीगे वस्त्रों में, भीगते,

यह तो तुम थे!

मैं हर्ष से भरा आश्चर्य से चीखा, ''अन्दर आओ, अन्दर आओ'', और तौलिया तथा कपड़े लाने भागा। परन्तु जब तक मैं लौटता, तुम जा चुके थे।

जिस क्षण मैंने अपना आभार प्रकट करना चाहा तो तुम प्रकट हुएऋ जिस क्षण मैंने अपना स्नेह प्रदर्शित करने की इच्छा की तुम जा चके थे।

बिस्तर पर गया लेकिन सो न सका। मैं दरवाजे पर दूसरी बार दस्तक की प्रतीक्षा करता रहा, पर व्यर्थ।

;2द्ध

दिन बीतते गए और तुम दुबारा नहीं आए। दरवाजे की हर दस्तक पर मेरी आशा प्रखर हो उठती, पर वह दस्तक तुम्हारी नहीं होती। मेरी निराशा गहराती गई। ''तुम्हारी विधियाँ कितनी विचित्र है''। और अन्ततः मैंने तुम्हें शिकायती पत्र लिखने का निर्णय किया। मैं अपने डेस्क पर एक बार फिर लिखने बैठा, पृष्ठ दर पृष्ठ रंगते हुए, कभी-कभी रोते हुए भी मेरे अर्न्तमन मे तुम्हारी दस्तक की आशा, प्रतीक्षा यहां तक कि आग्रह भी कहीं छुपा बैठा था। परन्तु कोई दस्तक नहीं हुई।

''यह कैसे? पहले तो मैंने बस कुछ ही शब्द लिखे थे, तुम प्रकट हो गए थे। परन्तु अब तो मैंने इतना लिख डाला कि एक अध्याय होने को आया, इस पर भी तुम्हारा कोई अता-पता नहीं''।

;3द्ध

फिर दिन बीतते गए, ह्रदय बोझिल था और मस्तिष्क में उथल-पुथल थी। धीरे-धीरे कड़ुवाहट मंद होने लगी। यद्यपि तुम्हारे अभाव की पीड़ा थी फिर भी न आने के लिए मैं तुमसे रूष्ट नहीं था। संभवतः तुम्हारी अदृश्य कृपावर्षा ने मेरी चाह और आशा की प्रखरता को कुछ कम कर दिया था।

एक शाम जब मैं बिस्तर की चादर समेट रहा था तो मैंने पदचाप की ध्वनि सुनी, देखा तो मेरे सामने खड़े हुए तुम थे।

तुम्हारी मुस्कान से मेरे लिए विशु(प्रेम और स्वेच्छा साफ दिखाई दे रहे थे। परन्तु मैंने तुम्हारा स्वागत ठंडे भाव से
किया। मेरे पिछले रोष का कुछ अंश अचानक मेरे व्यवहार मे लौट आया।

''तुम्हें क्या हो गया है?'' तुमने पूछा।

''कुछ नहीं'', बोझिल स्वर में मैंने कहा।

''मुझसे कुछ पूछना है?''

''नहीं''

''कोई समस्या, कोई शिकायत?''

''इस समय तो नहीं।''

''क्या तुम्हारी इच्छा है कि मैं तुम्हें कुछ बताऊँ?''

''मुझे नहीं मालूम।''

''क्या तुम मुझसे अप्रसन्न हो?''

''एकदम तो नहीं।''

लेकिन अब तक मैं थर्रा उठा। तुम्हें प्रसन्न करना मेरा काम है। इस पर भी तुमने पूछा ''क्या तुम मुझसे अप्रसन्न हो? ''

तुम कहते गए, ''तुम्हारी चुप्पी बताती है कि तुम्हारे ह्रदय में ऐसा कुछ है जिसे व्यक्त करने से रोक रहो हो। आश्वस्त हो जाओ। क्या मैंने तुम्हारे साथ कुछ गलत किया है? ''

मेरा सयंम तुम्हारी कोमल सदेच्छा के सामने टिक न सका अब मैं अपने उद्‌गार रोक न सका और फूट पड़ा, ''जब मैंने तुम्हें द्वार पर खड़े देखा, तो अर्न्तध्यान क्यों हुए? और जब मेरे लिखे शब्दों को अश्रुओं ने धुधँला कर दिया तो लौटे क्यों नहीं? ''

''ओह तुम्हारा मतलब उस बात से है। समझा! लेकिन जो कुछ भी हुआ तुम्हारे भले के लिए, तुम्हारे ह्रदय को गहरा छूने के लिए हुआ। तुम्हारी पुकार में निहित चाह ने हमारे बीच दीवार खींच दी जिसने मुझे तुमसे छिपा लिया। परिस्थिति को मेरी इच्छा मान लेने की तुम्हारी स्वीकृति ने मुझे तुम्हारे पास आमंत्रित कर लिया।''

जी हल्का हो गया और मैंने उत्तर दिया, ''यही वह कारण है जिससे तुम अब आए हो। ''

तुम्हारी प्रभा से विह्वल हो मैंने नेत्र मूंद लिए। जब मैंने पुनः नेत्र खोले तो देखा बाहर एक तूफान आ गया है। आकाशीय बिजली की एक चमक हुई, तुम उसमें प्रविष्ट हो, चले गये। तुम्हारा एकाएक प्रस्थान कैसा विस्मयकारी था।

चुपचाप आना, और बिजली की गति से लुप्त हो जाना क्या तुम्हारा स्वभाव है?

यह पूछने के लिए तुम्हारे पुनः आगमन की प्रतीक्षा में हूँ।

केवल एक अश्रु बिंदु

मेरे किसी उच्छ्वास की अवेहलना तुमने कभी नहीं की और मेरी कोई पुकार तुम्हारे द्वारा अनुत्तरित नहीं रही। मैं अपना जीवन मूर्खता और अव्यवस्था मे जीता रहा। इस पर भी तुमने कभी भी चेतावनी के शब्द नहीं कहे। अपने हर संकट की घड़ी में मैंने तुम्हें अपने अन्तर में पाया। तुम्हारी करूणा के लिए मैंने कभी आभार प्रकट नहीं किया। तुमने इसके प्रदर्शन की कभी तनिक भी अपेक्षा न की थी।

अभी तक चाहे मैंने तुम्हें पुकारा हो या न पुकारा हो तुम मेरे निवास पर प्रायः आते-जाते रहे थे। चाहे हमारा वार्तालाप हो रहा हो या तुम से मौन सानिध्य रहा हो, तुम मेरे ऊपर लगातार शांति की वर्षा करते थे।

तुम मेरे पास क्यों आते थे, यदि इसका कोई तर्क है तो वह यह कि प्रेम स्वयं एक विधान है। तर्क से प्रेम का रहस्य या उसकी पात्रता के प्रति अवहेलना का रहस्य कभी उद्घाटित नहीं हो सकता। प्रेम इतना अविवेकी कैसे हो सकता है, इसकी थाह लेते तर्क अपना सामर्थ्य खो बैठेगा।

तुम्हारा प्रत्येक आगमन मेरे लिए अमूल्य उपहार रहा है। लेकिन जिस आगमन ने मुझे सबसे अधिक विस्मित किया वह था तुम्हारा चुपचाप आगमन और एकाएक प्रस्थान।

तुम क्षण भर के लिए आए और चले गये तुमने कोई संकेत भी नहीं छोड़ा।

इस पर भी मैं तुम्हारे उन दृष्टिपातों में अत्यावश्यकता तथा अंतरंगता का भाव भुला नहीं सकता। यदि तुमने एक शब्द भी कहा होता तो मैंने समझा होता या न समझा होताऋ लेकिन तुम तो मौन रहेऋ इसने मुझे सचमुच रोमांचित कर दिया और मैं सचमुच डर सा गया।

जब तुम प्रस्थान कर रहे थे तो मैंने एक मोटा सा अश्रुबिंदु तुम्हारे कपोल पर से ढलकते हुए देखा। मात्र एक बूँद! जिसमें दुर्लभ चमक और प्रभायुक्त पारदर्शिता थी। इसका क्या तात्पर्य था? मैं अनुमान न लगा सका, आज तक न समझ सका।

उस मात्र एक अश्रुबिंदु ने मेरे सम्पूर्ण अस्तित्व को प्रभावित किया था, इस पर भी मैं उसके महत्व की गहराई का अनुमान लगाने में असमर्थ हूँ।

उस एक अश्रु के महत्व की अनेक संभावनाएं मेरा हृदय अनुभव करता है।

जैसे क्या तुम मुझसे अप्रसन्न होकर भी उसे व्यक्त नहीं करते? यदि ऐसा है तो मैं दुखी हूँ। या तुम मुझसे इतने प्रसन्न हो कि उसे व्यक्त करने के लिए शब्द नहीं है? यदि ऐसा है तो मैं अति भाग्यवान हूँ, यद्यपि मुझे नहीं लगता है कि कभी मैंने तुम्हे प्रसन्न करने के लिए कभी भी कुछ किया है।

या सम्भवतः तुम्हें मेरे किसी भावी कष्ट का पूर्व ज्ञान हो गया हो और प्रेम के वशीभूत अपने आँसू न रोक सके हों? यदि ऐसा है तो कृपा करके मेरे ऊपर जब ऐसा समय आए तो सहचर बनकर मेरे अंग संग रहो और स्वयं में मेरी आस्था को सहारा दो, जो मुझको तुम्हारे द्वारा दिया गया प्रेम का उपहार है।

या, वह अश्रु बिंदु मेरी किसी पहले की गई पुकार का देरी से दिया गया उत्तर था?

या वह मेरी किसी भूल का कोमल उलाहना था? मैं तुम्हें आश्वस्त करता हूँ कि अपनी दैनिक दिनचर्या और तमाम व्यस्तताओं में भी तुम्हारी सहायता से अपने हृदय मे तुम्हारा सदैव स्मरण करते रहने का भरसक प्रयास करूँगा।

या वह अश्रुबिंदु मेरे कुछ करने या न करने से अप्रभावित, तुम्हारे विशु(प्रेम का मणि जैसा स्वच्छ चिन्ह था? तुम्हे अप्रसन्न करने वाला मैं, कितना नीच हूँ। तुम प्रेम हो साक्षात प्रेम! मेरी घोर निराशा एवं संकोच के क्षणों मे मेरे अन्दर विश्वास जगाने वाले और मार्गदर्शन करने वाले!

तुम मुझसे, जल्दबाजी मे ही सही इतना तो कह सकते थे कि, ''तुम मेरे हो'' लेकिन तुम क्या करो या कहो इसकी पूर्व धारणा बनाना कैसी नीचता है। मेरी धृष्टता क्षमा करो। तुम्हारी विधियां अप्रतिबन्धित अत्यंत सरल होती हैं।
लेकिन कोई आश्चर्य नहीं कि मेरी मक्कारी, मोल-तोल की मनोवृत्ति, मतलबी मस्तिष्क तुम्हें और तुम्हारी विधियों को समझने में असमर्थ है।

अतः जो भी मैंने यहां प्रकट किया उसके लिए क्षमा करो। थोड़ी देर के लिए सही ..... उस अद्वितीय अश्रुबिंदु को तुम्हारी प्रसन्नता के लिए जीवन जीने में मार्गदर्शक तारे का कार्य करने दो।

जिस किसी क्षण मैं तुम्हें अप्रसन्न करने वाला होऊं तो मुझे पहले ही उस अश्रु बिंदु के दपर्ण से ज्ञात हो जाए जिससे मैं अपने को सुधार लूँ। मैं तुम्हारी इस रक्षात्मक कृपा के लिए प्रार्थना करता हूँ।

उल्कापातीय विधि

तुम्हारी पहली पिता समान स्नेह से परिपूर्ण दृष्टि ने मुझे 'घर' की ओर आमंत्रित किया। इस दृष्टि ने मेरे हृदय के केन्द्र में पहुँच, मुझे आजीवन पशुता की लीक से कृपापूर्वक खींच कर उल्का की भाँति तुम्हारी ओर प्रक्षेपित कर दिया।

उसी क्षण मुझे अपने अन्तर में एक विचित्र झटके की अनुभूति हुई, जिससे संदेश मिला कि मैं तुझ सविता, की एक क्षणिक चिन्गारी, तुम्हें खोजते, जाने क्या टटोलते, युगों पूर्व तुमसे अलग हो गया हूँ।

इस पर भी मैं अन्जान था कि उस धन्य क्षण जिसमें तुमने मुझे अपने गुरूत्वाकर्षण की परिधि में लिया मेरी वास्तविक यात्रा के प्रारम्भ होने का चिन्ह था।

थोड़ी देर के लिए तो मेरी चेतना अंधकार के समक्ष कुहुकती रही, गहरी खाई मेरे सामने थी। इस पर भी मेरा हृदय 'घर' लौट आने की निश्चित नियति की उमंग में था।

तुम्हारे दृष्टिपात ने मेरे अन्तर में कैसा क्रान्तिकारी परिवर्तन कर दिया था। तथाकथित ''बु(ि'' की इतने गर्व से धारण की गई दीवार अब स्वतः गिर जाने पर बोध हुआ कि अब मैं शिक्षक नही हूँ। यह उस ''शिक्षक वृत्ति'' को अपने भले के लिए अलविदा हुआ। मेरे इस अन्वेषण ;खोजद्ध ने मुझे सम्पूर्ण हृदय से हर्ष निनाद करने का अवसर दिया। विशेषतया तब जब मुझे ज्ञात हुआ कि दुनिया ने भी चैन की सांस ली है। ;द्वितीय विश्व यु(की समाप्ति-अनुवादकद्ध

अतः अब और मुखौटे नहीं, और छलनाएं नहीं। आखिर, निस्वार्थ होने का प्रयास भी स्वार्थीपन का ही शालीन परिधान है। अब मुझे यह स्पष्ट हो गया कि किसी का अनुकरण या प्रतिस्पर्धा करने की आवश्यकता नहीं। भला कैसे करता, जब यह अनुभव करता कि इससे तुम्हारी पुकार का अपमान होगा?

अब, कभी-कभी यह अनुभव करता हूँ कि न तो मैं किसी का हूँ, न कोई मेरा है। कभी तो यह अनुभव करता हूँ कि मैं स्वयं का भी नहीं हूँ। कैसी विचित्र नियति है?

जीवन, भय और पीड़ा के क्षणों से युक्त, सुरक्षा और आनन्द के क्षणों से

अन्तरावरोधित, एक अभियान हो गया है।

यह उल्कापातीय मार्ग अज्ञान के अंधेरे शून्य को चीरता हुआ, तुम्हारे अस्तित्व, ज्योति के आवास, सभी उल्काओं के स्रोत की पूर्णता से मिलकर चूर्ण हो, विलीन होने जा रहा है।

कृतज्ञता का सतत प्रवाह

एक दिन आकाश बादलों से ढका था, समय मानो रूक सा गया था। मेरा मन, अकेलेपन की भावना के प्रबल होने से, उदास था। मैं कमरे में अशांत मन से चहलकदमी कर रहा था फिर असहज मन से कुर्सी पर बैठ गया। यह वह समय था जब मैं लंबी बीमारी के बाद स्वास्थ्य लाभ कर रहा था।

अचानक तुम्हारे न जाने कितने उपकार आँखों के सामने आने लगे और मैंने पाया कि इन उपकारों ने मुझे रोग मुक्त करने में सहायता प्रदान की। बहरहाल तब मैं शीघ्र स्वास्थ्य लाभ के लिए इतना व्याकुल था कि मैंने तुम्हारे सहारे और अवलम्बन के विषय में सोचा भी न था। मैंने तुम्हारे उपकारों के प्रति एक बार भी कृतज्ञता प्रकट नहीं की थी। यह ध्यान आते ही मैं लज्जा की भावना में डूब गया। मैंने मौन रहकर हृदय में ही तुमसे सच्ची क्षमायाचना करने का निर्णय लिया।

ठीक उसी समय तुम मेरे सामने, जिस कुर्सी पर मैं बैठा था उसके पास रखे स्टूल पर बैठे प्रकट हुए। तुम, जो भी मुझे कहना था उसे बड़ी उत्सुकता से सुनने की प्रतीक्षा कर रहे थे। मैंने तुम्हारी मुखमुद्रा को इतना आतुर, आँखों में ऐसा दीप्त आश्चर्य, इससे पहले कभी नहीं देखा था।

मैंने खड़े होकर तुम्हारी वन्दना करनी चाही परन्तु स्नेहपूर्वक मेरा कन्धा दबाते हुए तुमने कहा, ''औपचारिकता में मत पड़ो''। वह कैसा कोमल, प्रेमपूर्ण स्पर्श था तुम्हारा! लगा जैसे मेरे पूरे शरीर में बिजली दौड़ गई हो।

तुम बैठ गए, लेकिन मैं असमजंस में पड़ गया कि वार्तालाप कैसे आरंभ करूँ! तुम व्याकुल दिखे, कहा, ''चलो, निःसंकोच बोलो।''

''मैं तो बस वही कहना चाहता था कि मैं तुम्हारा आभारी हूँ।''

''तुम्हारे इसी एहसास के जागृत होने के कारण ही तो मुझे यहां आना पडा है। ''

''मुझे नहीं पता था कि तुम कृतज्ञता प्रकट करने को इतना महत्व देते हो। क्या बता सकते हो क्यों?''

''कृतज्ञता की भावना मेरे अप्रतिबंधित प्रेम की प्राप्ति स्वीकार की मुझे

सबसे प्रिय विधि है। और इससे तुम्हारे- मेरे सम्बन्ध में दृढ़ता आती है। मुझे अपने लिए इसकी अपेक्षा नहीं है बल्कि यह तुम्हारे अपने भले के लिए ही है।''

''कैसे?''

''इससे वें नए अनौपचारिक मार्ग खुल जाते हैं जिससे तुम्हें मेरी अधिक से अधिक उपस्थिति का अनुभव हो सकता है। ''

''तो कृपया मुझे बताओ कि कृतज्ञता क्या है ?''

''कृतज्ञता, एक अर्थ में, जीवन को हर परिस्थिति में, क्षण-प्रतिक्षण, मेरी इच्छा रूप में स्वीकार करने की एक कला है। तुम मुझे सर्वस्व समर्पित करते हो और सब कुछ मुझसे प्राप्त करते हो।''

''भला मैं दैनिक दिनचर्या में कैसे तुम्हारे प्रति कृतज्ञ रह सकता हूँ''?

''देखो, यदि तुम वास्तव में ईमानदारी से कृतज्ञ रहना चाहते हो तो तुम्हें अपनी सामान्य दैनिक क्रियाओं या महत्वपूर्ण कार्यों को पूरा कर सकने में मेरी छोटी-छोटी कोमल-कृपाएँ जिनकी संख्या बहुत होगी का ध्यानपूर्वक मनन करना होगा। अच्छा, एक बात बताओ, कभी सोचा है तुम्हें मेरी ओर से सबसे अमूल्य उपहार क्या मिला - मनुष्य का रूप या इसका कोई अंग जैसे- आँखें जो देख सकती हैं, या कान जिनमें सुनने की शक्ति है? ''

''गंभीरता से तो नहीं सोचा।''

तो जान लो कि तुम जो कुछ भी करते हो, उसका दस लाखवां भाग भी अपना निजी नहीं कह सकते। '' तुमने खिड़की की ओर इशारा करते हुए कहा, ''आकाश की ओर देखो और इसके विस्तार का अनुभव करो। यह ब्रह्माण्ड जो इतना विस्तृत है मेरे द्वारा धारण किया गया है''।

''इस प्रकार तुम्हारे कर्म के दस लाखवें हिस्से पर भी 'निजी' होने का दावा असम्भव रूप से अधिक है। जो कुछ है वह मेरे कारण है। तुम ब्रह्माण्ड के आंतरिक क्रियाकलाप का केवल बाहरी विस्तार का प्रतिबिंब ही देख पाते हो''।

अत्यन्त आश्यर्चं और सीमित ज्ञान से मैंने उत्तर दिया ''मैं इन सब से अन्जान था! मुझे जीवन की आंतरिक गहराइयों के प्रति जागरूक करने के लिए मैं तुम्हारा कृतज्ञ हूँ। लेकिन आंतरिक गहराइयों में जरा सा प्रवेश भी मुझे आदर मिश्रित भयपूर्ण एवं घोर परिश्रम का कार्य प्रतीत होता है''।

"यद्यपि मैं किसी को किसी बात के लिए बाध्य नहीं करता, फिर भी जो कोई इस आंतरिक यात्रा के लिए तत्पर रहते हैं, उनकी सहायता करता हूँ। मानव स्वरूप की क्रियाओं की गहन खोज में जितना अधिक प्रवृत्त होगे, उतना ही अधिक तुम्हें यह अनुभव होगा कि तुम्हारी प्रत्येक क्रिया मेरी ही उपस्थिति के कारण है। इस जागरूकता की चेतना तुम्हें शैनेः-शैनेः अन्त में मेरे भीतर जीवन की सम्पूर्णता के बोध तक लाएगी। "

"आन्तरिक जीवन की विशालता का यही आयाम मुझे डराता है। मुझे संदेह है कि कभी इस यात्रा को अपने बल पर प्रारंभ करने का साहस भी कर सकूँगा।"

तुम मुस्कुराए, "क्या मेरे प्रेम और पथ-प्रदर्शन में विश्वास नहीं? "

"अवश्य है, पर सम्भवतः उतना पूर्ण नहीं जितना होना चाहिए। "

"ऐसी नकारात्मक सोच क्यों? यह यात्रा, यह जीवन-प(ति
न तो कठिन है न सरल। तुम जहां भी स्थित हो वहीं से तुम्हारे सामने प्रकाश की ओर या अन्धकार की ओर जाने के लिए दोनों विकल्प सदा खुले हैं, चुनना तुम्हें है। "
"तो कृपा कर प्रकाश की ओर पहला कदम बढ़ाने में मेरी सहायता करो"।

"जब तक तुम मेरे ऊपर निर्भर हो, मेरे पथप्रदर्शन की आश्वस्ति तुम्हारी ओर बहती रहेगी। जीवन की इस आंतरिक यात्रा से तुम्हारे बाह्य क्रियाकलापों में कोई अन्तर नहीं आता। यह तो मेरे साथ एक प्रकार का आन्तरिक सम्बन्ध है जो दूसरों को दिखे बिना साधारण, सामान्य जीवन शैली का निर्वाह करने में तुम्हारा सहायक होता है।"

"क्या तुम मार्ग के हर कदम पर मेरी ऐसी सहायता करोगे कि मैं पथभ्रष्ट न हो सकूँ?"

"यदि तुम्हारी खोज निष्ठावान है तो तुम्हें मेरी सहायता के चिन्ह सदा तुम्हारी ओर मुस्कुराते मिलेगें। अपना खेल मुझमें खेलने के प्रयास की अपेक्षा अपने अंदर मेरे खेल के साक्षी बनो। तब तुम्हारा प्रयास सहज से सहज, प्रयासरहित हो उठेगा और कृतज्ञता की धारा मेरी ओर बह उठेगी। और मेरी ओर तुम्हारी यात्रा उल्लसपूर्ण होगी। "

आश्वस्त तथा बहुत प्रभावित होकर मैंने अपनी कुर्सी से टिककर आँखें बंद

कर लीं। मैं तुम्हारे आगमन और परामर्श के लिए तुम्हारा आभार व्यक्त करने के लिए शब्द ढूंढ़ने लगा। बार-बार केवल दो शब्द आ सके,

"तुम्हारा धन्यवाद", तुम्हारा धन्यवाद!" लेकिन जैसे मैंने आँखें खोलीं तो देखा तुम जा चुके थे। मेरे प्रति तुम्हारे प्यार ने मेरे दिल को छू लिया। अति सामान्य, सहज प्रार्थना के उद्गार, मौन में फूट पड़े :

हृदय को
सतत् प्रवाहित कृतज्ञता का निर्झर बना दो
जो तुम में झरता रहे।

जलधि बना समुद्र तट

तुम सागर तट पर, विचारमग्न से तेज कदमों से टहल रहे थे। तुम्हारी विकिरणशील आभा ने तुमसे संबधित हर वस्तु को जीवन्त बना दिया था।

तुम्हारी उपस्थिति के कारण रेत का प्रत्येक कण दुलर्भ आभा से प्रदीप्त था। क्या वे कण तुमसे मौन वार्तालाप में लीन थे? दूर सागर में लहरें किनारे की ओर एक लय में गर्जना के साथ दौड़ी चली आ रही थीं: ''हमें तुम्हारी आवश्यकता हैऋ हमें तुम्हारी आवश्यकता है। ''

और वे तुम्हारे द्वारा स्पर्श और आर्शीवाद प्राप्त रेत के कणों के माध्यम से तुम्हें फेनिल अभिवादन भेज रही थीं।

मैं क्षितिज पर, तट और उठती-गिरती लहरों के ऊपर नीले आकाश का सौन्दर्य निहारते चकित था।

इस एश्वर्यमय दृश्य से अविभूत मैंने दृष्टि नीचे की लेकिन उससे बड़ा आश्चर्य मेरी प्रतीक्षा में था।

मैं तरंगित लहरों या तट को नहीं देख पा रहा था। जहां-जहां, दूर या पास, तक मेरी दृष्टि पहुँच सकी मैंने केवल विशाल रिक्त स्थान देखा। न वह भरा था न खाली था, क्योंकि वहां सर्वातिशायी जीवन की वर्षा होती प्रतीत हुई।

कुछ क्षण बाद मैं सामान्य दशा में लौटा और दृश्य धीरे-धीरे धुंधला होने लगा।

लेकिन आश्चर्यो की श्रृखंला चलती रहीः मैंने देखा कि एक ज्योति-स्तम्भ तट और लहरों के बीच गौरवान्वित चाल से बारम्बार आगे-पीछे चलायमान है।

मैं अपनी आँखों पर विश्वास न कर सका।

यह कोई फन्तासी थी कि वास्तविकता?

या यह दोनों ही एक दूसरे में गुँथे-तुम्हारे अस्तित्व का सामुद्रिक प्रकाश? प्रेम के वशीभूत तुम्हारे कालहीन विस्तार में, क्या यह केवल मेरे लिए, एक क्षण के लिए तुम्हारी अभिव्यक्ति थी? लेकिन यह कैसे संभव है?

देश ;आकाशद्ध से परे तुम, न आते होऋ न जाते हो। इस पर भी लगता है कि यह तुम्हारी भागवत व्यवस्था है कि एक बार आने के बाद तुम कभी नहीं जाते।

तुम्हीं वह सागर हो जो चमकता छोर और रेत बन गया है। त्वरित लहरें और सागर की फुहारें सभी तुम्हारी अस्तित्व प्रभा में उल्लसित नृत्य का रही हैं।

इस पर भी कितना सत्य है यह

कि न तो तुम तट हो, न लहरें, न ही रेत, न ही सागर तुम ''एकवेवास्ति'', स्वतः अस्तित्ववान और देशकाल से परे स्वतंत्र हो।

जागो-जागो

मैंने एक समारोह के लिए दिन-रात एक करके, कड़ी मेहनत की और इसकी सफलता के लिए तन-मन के साथ धन भी व्यय कियाऋ और वह भव्य समारोह सि(हुआ। लेकिन कार्यक्रम के बीच में एक बार भी मेरे नाम का उल्लेख नहीं हुआ। मेरे प्रयासों को मान्यता नहीं दी गई और मेरी अवहेलना हुई। बजाए मेरे, कुछ अन्य धनी और बेईमान लोगों को पुरूस्कृत किया गया। तालियों की तेज ध्वनि और हर्षनाद करके उपस्थित जनता ने उन्हे सम्मनित किया।

मैं इस कोलाहल को सहन न कर सका और पिछले दरवाजे से वहां से चला आया। अपने कमरे में क्रोध तथा ईर्ष्या से जलभुन कर मैंने अपनी आँखें नम तौलिए में छुपा लीं। मैं बुदबुदाया, ''दुनिया कितनी कृतघ्न है। ''

इसी पल कमरे में लयब(, ''इस भद्दी सज्जा को त्यागोऋ जागो, जागो'' कहते तुम प्रविष्ट हुए। मैंने शब्दार्थ पर ध्यान नहीं दिया परन्तु मन ही मन बरबस हँसी आ गयी। लेकिन इससे मेरे अंदर के क्रोध में और उफान आ गया मैंने आँखों पर से तौलिया हटाया स्वीकार नहीं किया। तुम मेरे ऊपर झुके और ''जागो, जागो'' कहते हुए तौलिया खींच फेंका।

हतप्रभ और अपराध-बोध से मैंने उठकर बिस्तर पर तुम्हारे बैठने के लिए जगह बनाई और अपने लिए एक स्टूल खींच लिया।

मैंने तुम्हें देखा, तुमने मुझे देखा।

''मैं तुम्हें जगाने आया हूँ'', तुमने कहा।

''किसके प्रति जगाने?''

''तुम्हारी अर्न्तनिहित मूर्खता के प्रति जिससे कि वह स्वतः क्षीण हो जाए''।

मैंने समझा कि तुम सुबह के समारोह की बात कर रहे हो। मैंने उत्तर दिया ''इस संसार में जो प्रचुर मूर्खता और कृतध्नता है, उसका क्या होगा?''

''क्या तुम संसार के सभी लोगों के विवेकशील बन जाने की प्रतीक्षा करते रहना चाहते हो? ऐसी दशा में तो तुम्हें अनन्त काल तक प्रतीक्षा करनी होगी''।

''तो समारोह में जो कुछ घटा, वही होना चाहिए था''?

''हाँ, क्या यह अच्छा सबक नही था?''

''किस प्रकार?''

''इससे तुम्हें यह सीख लेनी चाहिए कि तुम्हें क्या नहीं करना है।''

''अच्छा अब तो यह समाप्त हो गया। मुझसे अब क्या करने की आशा करते हो?''

''जाग्रत होओ! तुम्हारा मस्तिष्क मुझमें जाग्रत होकर सांसारिक विधियों से कम प्रभावित होता है, तब तुम्हें भीगी तौलिया में आँखें नही छुपानी पड़ती।'' कहते हुए तुमने मेरे ऊपर स्नेहमयी दृष्टिपात किया।

''क्या 'तुम्हारे अन्दर जाग्रत होने' का अर्थ जो कुछ भी घटित हो रहा है उसे तुम्हारी इच्छा मान लेने का प्रयास करना है?''

''यही तो चरम बोध है। फिर भी यदि तुम इस बोध की इच्छा करोगे तो यह तुम्हारे अन्तर में वैसे ही प्रकट होगा जैसे कली खिलकर पुष्प बनती है। लेकिन यह ''विकास'' इतना धीमा और चुपचाप होता है कि व्यक्ति का ध्यान इस ओर नहीं जाता। क्या तुमने कभी इसे पहचाना या अनुभव किया है?''

''एक अस्पष्ट अनुभूति आती है और जाती है, आती-जाती रहती है! संदेह उभरते और विलीन होते रहते है। भला कब इसके प्रति विश्वस्त हो सकूँगा?''

''मेरे अन्दर जाग्रत होने के असँख्य चरण हैं ...... क्या तुम कभी स्वप्न देखते हो?''

''हाँ प्रायः हर रात में। लेकिन मेरे प्रश्न को टालो नहीं। क्या मेरे स्वप्नों का भी तुम्हारी इच्छा से कोई सम्बन्ध है?''

''अपरोक्ष रूप से है।''

''विषय वस्तु को जटिल न बनाओ।''

''नहीं वास्तव में मैं तो इसे सरल बना रहा हूँ।''

''तो, माफ करना, कृपया कहते रहो।''

''स्वप्न में क्या कभी तुम सूर्य, चन्द्र, तारे और आकाश का विस्तार देख पाते हो?''

''मुश्किल से, कभी-कभार।''

''ठीक है। क्या कभी तुम लोगों को आपस में लड़ते-झगड़ते या अभिवादन

करते देखते हो? क्या कभी बगीचे की हरियाली या तपते रेगिस्तान देखते हो''?

''अधिक बार नहीं। इस पर भी मैंने कहीं अधिक फंतासी वाले और अविश्वसनीय स्वप्न देखे है। .... कृपया मुझे सीधा उत्तर दो''।

''मेरे सीधे उत्तर से पहले मेरे एक और प्रश्न का उत्तर दो। तुम्हारे स्वप्नों की विषय सामग्री कहां से आती है? और फिर वो कहां चली जाती है?

''अच्छा प्रश्न है।''

''मुझे उत्तर, भी अच्छा दो। जल्दी।''

''लगता है स्वप्नों का उद्गम मेरा मस्तिष्क है और इसी में वे फिर से लुप्त हो जाते हैं।''

''बहुत अच्छे, तुम हल के नजदीक पहुँच रहे हो।''

''लेकिन इसका कोई ओर-छोर मेरी पकड़ में नही आ रहा है।''

''स्वप्न तुम्हारे अपने ही मस्तिष्क का प्रक्षेपण है किसी दूसरे के मस्तिष्क का नहीं। तुम्हारे स्वप्न, तुम्हारे अपने विचारों एवं भावों से निर्मित होते हैं। स्वयं तुम अपना स्वप्न बन जाते हो।''

''तुम्हारी बात थोड़ी और अस्पष्ट ही सही, मेरी समझ में आ रही है।''

''ठीक इसी तरह यह सम्पूर्ण सृष्टि, हर एक प्रत्येक को, अपने अन्दर जाग्रत करने हेतु मेरा स्वप्न दर्शन है।''

''लेकिन क्या तुम्हारी 'इच्छा' सृष्टि की शासक है?''

''अपने स्वप्न में तुम विषय वस्तु और परिस्थिति को नियंत्रित नही कर पाते क्योकि तुम सोए रहते होऋ लेकिन सर्वज्ञ होकर मैं अपने स्वप्न के प्रति सचेत रहता हूँ।''

''तब इससे क्या मुझे यह निष्कर्ष निकालना चाहिए कि केवल तुम्हारी इच्छा ही सृष्टि में क्रियाशील है और किसी को कोई स्वतन्त्रता नहीं?''

''हर कोई स्वतंत्र है लेकिन यह स्वतंत्रता सीमित है। वृक्ष चल नही सकतेऋ चींटी उड़ नहीं सकती। इसी तरह प्रत्येक की अपनी सीमाएं हैं। इन सीमाओं से बाहर निकलकर स्वतंत्रता के विशाल साम्राज्य का अनुभव करने हेतु मैं सबकी सहायता करता हूँ।''

''मुझे अपनी बनाई हुई स्वतंत्रता सीमाओं को तोड़ने का कोई एक भी

उपाय तुम क्या बता सकते हो?''

''तुम्हारी इच्छा, भागवत् 'इच्छा पर निर्भर हैऋ और भागवत् इच्छा दमनकारी न होकर सहायोगकारी और मानव हृदय की निष्कपट प्रार्थना के साथ अनुकूलन के लिए सदा तत्पर रहती है। मानव इच्छा और भागवत् इच्छा, आपस में स्वतंत्रता से या एक साथ कार्य करने के लिए स्वतंत्र है।''

''अब तो मेरी समझ की गहराई चुक रही है, फिर भी कृपया कहते जाओ।''

''जो कुछ भी तुम्हारे मस्तिष्क के माध्यम से विचार आता है वो तुम्हें बन्धन मे बांधता है, क्योकि भौतिक और मनोवैज्ञानिक नियमों के अधीन तुम उसके विशिष्ट फल की आशा करते हो। जो कुछ भी तुम्हारे हृदय के भाव से नैवेद्य ;लड्डूद्ध की भाँति मुझे पूर्णतया समर्पित होता है वह तुम्हें तुम्हारी सीमाओं से मुक्त करने में तुम्हारा सहायक होता है। हृदय की 'विशु(भावना' मस्तिष्क की विचार-शक्ति से कहीं अधिक शक्तिशाली होती है''।

''देखो, यह सब कुछ मेरी समझ से बाहर है। कृपया मुझे बस इतना बता दो आज तुम्हारा यहां आगमन मेरी इच्छा के कारण सम्भव हुआ या भगवत् इच्छा से''।

''निश्चय ही इसका उत्तर तुम्हारी समझ से बाहर होगा क्योकि मेरा तुम्हारे पास आगमन मेरी सतत् कृपा का उपहार है। इसे समझाने के लिए हमें एक भिन्न आयाम में, अलग से वार्तालाप प्रारंभ करना होगा। मेरी कृपा किसी नियम, मानवीय या भागवत् के बंधन में नहीं।''

''ठीक है, मैं अपना अनुरोध वापस लेता हूँ। लेकिन क्या मैं तुम्हारी कृपा के उपहार का पात्र बना रह सकता हूँ?''

तुम्हारे मुखमण्डल पर प्रसन्नता की आभा थी। लेकिन मैंने देखा कि तुम अब प्रस्थान की मनःस्थिति मे थे। तुमने मेरी आँखों में नमी देखी, फिर फुर्ती से तौलिया उठाया और मेरी ओर फेंक दियाः ''शाबाश, शाबाश'' तुमने कहा, ''अपनी आँखों से निद्रा को, जाग्रति के लिए धो डालो।''

तुमन स्नेह से मेरा कंधा थपथपाया और चले गए।

कल्पवृक्ष ;इच्छा पूर्ण करने वाला वृक्षद्ध

वातावरण पूर्ण शांत एवं नवस्फूर्तिदायक था। मैं स्वयं में जीवन्तता एवं शांति का अनुभव कर रहा था। मैंने सोचा कि यह तुम्हारे आगमन की पूर्ण एवं सटीक स्थिति बनी है। लेकिन यह भी जान गया था कि तुम्हारा आगमन मेरे आंतरिक या बाह्य संकेतों से बंधा नही है। यह ऐसा ही था जैसे कोई हंस तुम्हारी कृपा समीर में पंख फड़फड़ा रहा हो।

लेकिन हुर्रा! इस समय इच्छा होते ही एकदम तुम्हारे आगमन ने मुझे आश्चर्यचकित कर दिया।

''तुम प्रत्याशित भी हो'', कहकर खुशी के मारे मैं चीख पड़ा।

''तुम मुझे अप्रत्याशित की परिभाषा में भी परिभाषित नही कर सकते।'' तुमने कहा, और राजसी मुखाकृति पर मंद मुस्कान बिखर गई।

मैं समझ गया कि तुम खेल की मनःस्थिति में हो। शरारती दृष्टि मुझ पर डाली और कहा ''आज मैं तुम्हें कुछ विशेष वस्तु देना चाहता हूँ।''

''वह क्या है?'' मैंने उत्सुकता से पूछा।

''अनुमान लगाओ।''

''क्या तुम्हारी अगली गति का क्या कोई अनुमान लगा सका है?'' मैंने प्रत्युत्तर दिया।

''अच्छा सुनो''। तुमने कहा, ''क्या चाहते हो कि आज शाम को जब तुम घर लौटो, तो तुम्हारे बगीचे में फलता-फूलता एक कल्पवृक्ष मिले?'' क्या इससे तुम्हें प्रसन्नता होगी? क्या तुम यह पसन्द करोगे?''

''उत्तर देने के पहले मैं कुछ झिझका ''क्या तुम सचमुच गंभीर हो?'' मैंने पूछा ''क्या सचमुच तुम मुझे चुनाव करने की स्वंतत्रता दे रहे हो?''

''हाँ, तभी तो तुमसे पूछा है।''

''यदि यह सच है तो मैं इसे न लेना ज्यादा पसन्त करूँगा।''

''आश्चर्य! क्या तुम यह नहीं सोचते कि इसे नकार कर तुम अति दुर्लभ

वस्तु से वंचित हो रहे हो?''

''हो सकता है। लेकिन तुमने मुझे विकल्प दिया ही क्यों? क्या मुझे तुम्हारे प्रति ईमानदार नहीं होना चाहिए? इस उपहार को नकारने के मेरे अपने कारण है''।

''सचमुच? बताओ तो।''

''तुम्हें पता है कि मैं एक साधारण मनुष्य हूँ, और तुम्हारी सृष्टि, क्षमा करना, अत्यंत छलनामय और प्रलोभनपूर्ण है। सच कहूँ, मुझे डर है कि कल्पवृक्ष की छाँव में बैठकर कहीं ऐसी इच्छा के लालच में न फँस जाऊँ जो तुम्हें असप्रन्न कर दे।''

''ओह! तो यह बात है।'' और मुख पर भोलेपन के भाव से तुम कहते गये ''कुछ भी हो, तुम्हारी जो इच्छा हो वह देने के लिए मैं आज बहुत अच्छे मूड में हूँ। तुम मुझसे क्या मांगना चाहोगे? ''

''मैं तभी मांगूँगा जब तुम मुझ विकल्प चुनने का मौका न देना स्वीकार करो। ''

''स्वीकार है।''

''तुम्हारी अपनी खुशी से दिया गया कुछ भी पा कर मैं गद्गद हो जाऊँगा। यदि तुम मेरे बगीचे के लिए कुछ देना चाहते हो तो मुझे स्वीकार है, चाहे वह काँटेदार पौधा हो चाहे फूलों का पौधाऋ उसे ले लेने मे मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी।''

''वे पौधे तुम्हारे किस काम आएंगें? कितने समय तक वे रहेगें?''

''मुझे बताने का मौका दो'' मैंने उत्तर दिया ''तुम्हारे और अपने सम्बन्धों के बीच से 'उपयोगिता' के महत्व को हटा देने से मैं तुम्हारा कितना कृतज्ञ हूँ। तुम मुझे जो भी दोगे उसमें तुम्हारी कालहीनता, जो मेरे लिए सबसे बहुमूल्य और प्रिय है, का जीवन्त स्पर्श महसूस होगा।''

तुमने मुझे प्रेमपूर्वक देखा, मुस्कराए और उसी तरह अचानक बिना कुछ दिए, वापिस चल दिए, जैसे तुम आए थे। तुम अप्रत्याशितता से भी परे हो। लेकिन तुम्हारी अर्थपूर्ण मुस्कान ने मेरे मन से ''चाहत बढ़ाने'' वाले वृक्ष को जड़ से उखाड़ दिया। जबकि तुमने स्पष्ट रूप से कुछ नहीं किया फिर भी मैंने कल्पवृक्ष की छाँव में बैठने के बहुमूल्य अवसर से भी ज्यादा मूल्यवान खजाना पा लेने का अनुभव किया।

लेकिन बुि(भी क्या है। कभी-कभी ही सही, सोचता हूँ कि कहीं मैंने तुम्हारे द्वारा दी गई चुनने की स्वतंत्रता का इस्तेमाल करके कोई भूल तो नहीं की, क्योकि तुम्हीं ने इसकी आज्ञा दी थी। इस पर भी मुझे ऐसा लगता है कि कहीं मैंने कल्पवृक्ष मांगा होता तो मैं तुमसे मेरे अंतरंग सम्बन्धों को खो देता। संभवतः मैं तुम्हारे ऊपर कम, कल्पवृक्ष के ऊपर ज्यादा निर्भर हो जाता और वह स्थिति मेरे लिए कितनी दयनीय होती।

अब मेरे पास तुम्हें स्मरण करने का कहीं अधिक अवसर है। दैनिक दिनचर्या के लिए, कुछ भी ओर सब कुछ की सहायता के लिए तुम्हें पुकराने का अवसर है। तुम्हारा प्रेम-स्मरण ही वह सच्चा कल्पवृक्ष है जो तुमने मेरे ह्रदय में रौंप दिया है। समय आने पर यह सदाबहार तुम्हारी प्रसन्नता के लिए पुष्पित होगा। कब? यह तुम ही जानो।

मित्रवत् और ज्वालावत् भी

''तुम्हारा पिछला आगमन अद्‌भुत था'', तुम्हारे बैठने से पहले ही मैं फूट पड़ा।

मुझे प्रेम से देखते हुए तुमने ताना कसा, ''और तुम्हें हमारी पिछली भेंट ;कल्पवृक्षद्ध पसन्द नहीं आई?''

कुछ आश्चर्यचकित हो मैंने उत्तर दिया, ''मेरे कहने का यह अर्थ नहीं था। आखिर मैं एक अति व्याकुल व्यक्ति हूँ। लेकिन तुम्हारे कहने का क्या यह अर्थ निकालूँ कि इन वर्तालापों में से तुम 'तुलना' का तत्व निकाल देने को कहते हो?''

''हाँ तुम्हारे बुि(निष्ठ मस्तिष्क से'' तुमने उत्तर दिया।

''क्या तुलना हमारे सम्बन्धों में बाधक है?''

''तुलना से एक वस्तु से दूसरी वस्तु को महत्व देने की प्रकृति जन्म लेती है।''

''तो उसमें क्या गलत है?''

''मुझ एक अनन्त तक की यात्रा के पड़ाव मे तुम्हें कई कठिनाईयों को पार करना होगा, और 'तुलना' उनमें से एक है।''

''तो तुम चाहते हो कि मैं किसी व्यक्ति या वस्तु को न परखूँ?''

''वह तो बहुत अच्छा होगा। जब तक तुम प्रत्येक व्यक्ति और वस्तु के अस्तित्व के महत्व का आदर नहीं करते, मेरी सतत् उपस्थिति और सौन्दर्य के महत्व को नहीं समझ सकोगे।''

''तो क्या मुझे दूसरों से, विशेषतया तुमसे वार्तालाप बंद कर देना चाहिए? किसी के लिए, अपने विचारों को बिना तुलना किए व्यक्त करना बहुत कठिन है।''

''निर्णय लेने मे जल्दबाजी मत करो। सांसारिक कार्य करते समय सही, गलत का विचार तो करना ही होगा। लेकिन अपने निर्णयों मे निंदा का भाव मत आने दो। मैं तुम्हें चुप रहने को नहीं कहता। स्वतंत्रतापूर्वक मुझसे वार्ता करो और जब जरूरी हो तो दूसरों से भी।''

''किसी भी विषय पर?''

''हाँ किसी भी। लेकिन आज, वार्ता के विषय परिवर्तन से पहले, मैं तुमसे

पूछता हूँ कि क्या कभी भी तुमने, हमारे बीच हुए वार्तालापों को, दूसरों के साथ बाँटा है?''

''केवल बहुत कम अवसरों पर''

''और ऐसा क्यों?''

''क्योंकि दूसरों को शिक्षा देना या परामर्श देना मुझे पसन्द नहीं। जब कभी मैं ऐसा प्रयास करता भी हूँ तो कभी तो मैं घबराने लगता हूँ और कभी-कभी सहम भी जाता हूँ।''

''दूसरों को शिक्षा देने का प्रयास मत करो। फिर भी किसी दूसरे से, मेरी उपस्थिति के अनुभव को बताना या जीवन जीने का विधि के बारे में मित्र भावना से बातचीत करना, शिक्षा देने की श्रेणी में नहीं आता।''

''क्या इस बारे में कुछ और ज्ञान प्रकाशित कर सकते हो?''

''ज्ञान के प्रकाश के पीछे मत भागो''। तुम हँसे, ''मैं लापरवाही से बचकानी बात करने की तुमसे आशा नहीं करता। दूसरों को मनोयोग से सुनो, और तब यदि तुम्हें लगता है कि तुमने मुझसे जो जाना है उसे उनके साथ बाँटना चाहिए, तो फिर संकोच मत करो।''

''बिना उनकी प्रतिक्रिया की परवाह किए?''

''अच्छा होगा यदि तुम अपने ही मस्तिष्क ;सदाशयताद्ध के प्रति सतर्क रहो। दूसरों की क्रिया-प्रतिक्रिया उतनी महत्वपूर्ण नहीं है जितनी उनके प्रति तुम्हारी स्वयं की प्रतिक्रिया।''

''इस प्रकार की जागरूकता और प्रतिक्रिया की समझ पैदा करने में मुझे लंबा समय लगेगा।''

''मैं तुम्हें रास्ता सुझाऊँगात्र मैं तुम्हारी सहायता करूँगा।''

''यह तो बहुत अच्छा होगा।''

''जब दूसरों से बात करो, मन ही मन उनके हृदयों में स्थित मुझे संबोधित करो। (शुरू-शुरू में तुम्हें ऐसा याद रखने में बहुत कठिनाई अनुभव होगी लेकिन यदि तुम निष्ठापूर्वक ऐसा करोगे तो यही तुम्हारे हृदय को प्रसन्नता से भर देगा। दूसरों के उत्तर तुम्हें मेरे निर्देशों की याद दिलाएगें। किसी-किसी समय यदि तुम्हारा मस्तिष्क पहले की तरह ही कार्य करता है तो भी, संदेह मत करो या

हतोत्साहित मत हो। थोड़ा धैर्य रखोत्र मस्तिष्क धीरे-धीरे सहयोग देने लगेगा। एक उदार संकल्प दूसरों में उदार संकल्प जागृत कर देता है।''

''यदि दूसरे मेरी खिल्ली उड़ाएं या उपहास करें तो क्या मुझे चुप हो जाना चाहिए?''

''अपनी पराजय स्वीकार कर लो, लेकिन दूसरों के कहने पर ध्यान मत दो। ऐसी घटनाएं मेरे ऊपर तुम्हारे विश्वास को परखने का कार्य करती है। ये वार्तालाप मेरी ओर से तुम्हें प्रसाद स्वरूप है इसलिए इन्हें दूसरों के साथ बाँटने मे कायर मत बनो। इन्हें दूसरों के साथ बाँटने से तुम्हें मेरे तक पहुँचने वाले अपने मार्ग को स्वच्छ करने का अवसर मिलेगा इससे तुम्हारी शिराओं ;रग-रगद्ध में प्रेम प्रवाहित होगा।''

''कभी-कभी शब्द मेरे होठों पर आ जाते है पर अंतिम क्षण में भय से मैं विचलित हो जाता हूँ।''

''यह पिछली यादों के बोझ के कारण है। प्रत्येक टक्कर में तुम्हें फिर से आरंभ करना चाहिए। प्रेमपूर्ण जीवन केवल गायन और वादन या प्रार्थनाओं और प्रवचनों से नहीं बनता। मुझ एक अविभाज्य, के साथ जीने के लिए तुम्हें, मेरे अन्दर मरना होगा। क्या तुम मृत्यु से डरते हो?''

''मृत्यु से नहीं, क्योंकि वह क्या है, मैं नहीं जानता। लेकिन मुझे स्वीकार करना होगा कि शारीरिक या मानसिक सम्भावित यंत्रणा से मैं डरता हूँ। मैं तुम्हारे पास सत्य जीवन के लिए आया और तुम 'मृत्यु' की बात करते हो। क्या तुम मेरा साहस आँकना चाहते हो''?

''मैं किसी वस्तु के लिए प्रयास नहीं करता। क्योंकि मैं सर्वज्ञ हूँ। दर्द से मत डरो क्योंकि वह मैं, जितना सहन कर सकता है, उससे कुछ कम ही दर्द प्रदान करता हूँ। तुम इस पर विश्वास करते हो?''

''यह स्वीकार करना कठिन है, अस्वीकार करना और कठिन। मेरा विचार है कि यह तुम्हारे हाथ में है''।

एक प्यारी मुस्कान से तुमने कहा ''लेकिन तुम जीवन के रंगमंच पर अपने हिस्से का खेल खेलने से भाग नहीं सकते''।

''ईमानदारी और तुम्हारे प्रति विश्वास का फूल मेरे हृदय में खिलने दो। क्या तुम

मुझे आशीष दोगे?''

''मांगना तो दूरी बना देता है। जब तुम मुझे मेरी इच्छा के प्रति अपने को समर्पित कर देते हो, तो तुमने पहले ही वह सब पा लिया जो तुम खोज रहे थे। प्रतीक्षा करो और देखो।''

''तब शरारती नेत्रों से, जैसे मुझे चिढ़ाने के लिए कहा- क्या यह भी अद्‌भुत आगमन रहा?''

मैं मुस्कुराया और बोला ''तुलना करने का लालच मत दो। इस पर भी बिना तुलना किए मैं टिप्पणी कर सकता हूँ कि यह मीटिंग आश्वस्त करने के साथ-साथ ललकार युक्त और मित्रवत के साथ-साथ ज्वालावत् रही''।

हम दोनों हँस पड़े।

तुम्हारे चिन्हः मेरे चिन्ह स्तम्भ

तुम्हारी ओर अपनी जीवन यात्रा में प्रायः अपने चिन्ह मुझे प्रदान करते रहने के लिए मैं तुम्हारा अति कृतज्ञ हूँ। कुछ लोग, तुम्हारे मुझे इस प्रकार मार्गदर्शन देने की विधि को, भले ही तर्कहीन या निरा पागलपन समझें परन्तु मैं ऐसा नहीं मानता। मेरे हृदय में तुम्हारे चिन्ह इतने स्पष्ट होते है कि मैं चकित हूँ कि लोगों को मेरा यह लगाव उन्हें क्यों आश्चर्य में डाल देता है। बेशक, मैं इस विषय के बारे में न तो किसी से बहस करूँगा और न उन्हें यह सब मानने के लिए प्रेरित करूँगा। लेकिन ऐसा करके, लगता है कि वें सब अपनी ''विवेकशीलता'' को बचाना चाहते है। क्या मजाक है तुम्हारी करूणामय उपस्थिति का कैसा व्यंग्य है।

चिन्ह स्वयं में वस्तुओं और घटनाओं पर निर्भर नहीं होते। बल्कि घटनाओं का उपयोग तो तुम, मुझे किसी विशेष परिस्थति की गहराई को समझाने के लिए करते हो। चिन्ह, मेरे लिए शु(मन से निर्णय लेने हेतु चिन्ह-स्तम्भ बन जाते है। वें ;चिन्हद्ध मेरे हृदय से भ्रम को दूर कर तुममे मेरे विश्वास को दृढ़ बने रहने में मेरी सहायता करते हैं। इसके लिए मैं तुम्हारा कृतज्ञ हूँ।

जब कभी मैं इन चिन्हों की किसी से चर्चा करता हूँ तो, समय-समय पर, मैं सुनने वाले के चेहरे पर व्यंग्यात्मक मुस्कान या निर्लिप्त भाव देखता हूँ। उनकी ''बेहतर समझ'' ने तुम्हारे आश्चर्य और परिहास की ओर खुलने वाली खिड़की बंद कर दी है।

प्रमाणिकता के आधार पर चिन्ह प्राप्ति की भविष्यवाणी नहीं की जा सकती क्योकि वे वैज्ञानिक नियमों के अनुरूप नहीं होते। किसी फल की आशा से प्रकट हुआ चिन्ह या तो आटो-सजेशन ;स्व-आदेशद्ध है या किसी और पूर्वाग्रह से बनी मानसिक स्थिति का परिणाम। यह सत्य-संदेश नहीं है क्योकि सत्य-संदेश हमेशा अप्रत्याशित होते हैं अर्थात उसके बारे में आप पहले से कोई अनुमान नहीं लगा सकते। वे जब-तब घटित होते रहते है।

तुम्हारा सत्य-संदेश उस भव्य सूर्योदय की तरह होता है तो एक नए दिन को लेकर आता है। चिन्ह परस्पर भिन्न होते है। चाहे दूर से देखने में वे एक समान लगे लेकिन गुणों और सौदंर्य मैं वे हर बार अलग होते है।

मेरी आलोचना करते समय कुछ चतुर लोग ;भागवत्द्ध चिन्हों को केवल दुर्बल व्यक्तियों की, उन्हें तुम्हारे तक की यात्रा हेतु बैसाखी मात्र बताते हैं। एक प्रकार से वे ठीक है, तो एक प्रकार से गलत। बेचारे दृढ़ात्मा लोग।

जब तक एक व्यक्ति अपने अन्दर तुम्हारे प्रति आस्था और विश्वास अनुभव करता है तब तक भला क्यों वे इन चिन्हों की निंदा करते हैं? वे अपनी बु(ि के घमण्ड में, यह नहीं जान पाते कि असहाय होने की स्थिति में तुम्हारे स्मरण के सहारे का कितना महत्व है। इसलिए वे उन्हें ;चिन्हों कोद्ध बैसाखी कहते है। क्या वे किसी दिन जान सकेगें कि तुम्हारे ऊपर निर्भरता कितना बड़ा आर्शीवाद है।

जिन्हें अपनी बु(ि पर विश्वास और गर्व है वे अपने तरीके से लंबे-लंबे डग भरते, यहां तक कि भरसक दौड़ते हुए, 'सत्य' जो तुम ही हो, तक यात्रा पूर्ण करें। उन्हें इसी तरह अपना प्रयास जरूर करते रहना चाहिए क्योकि वह सोचते हैं कि अतं में तुम तक पहुँच जाएंगे। मैं इस पर कोई टिप्पणी नहीं कर सकता, केवल इतना कह सकता हूँ कि इस प्रकार के व्यक्ति तुम्हें केवल लक्ष्य ही नहीं बल्कि लक्ष्य को तुम 'सर्वयापी एक' तक पहुँचने का मार्ग भी समझते है।

मेरी प्रार्थना है कि तुम्हारे अपने चिन्हों के प्रति मेरे अन्दर मोह को न पनपने दो। फिर भी मैं कैसे अस्वीकार करूँ कि मैं उन चिन्हों को प्यार नहीं करता? कृपया इन चिन्हों को मुझ तक पहुँचने से मत रोको।

शक्तिवान व्यक्ति तुम्हारी ओर कितने तेज वेग से भागें।
उसके लिए तुम दूर स्थित क्षितिज हो।
वे चिन्हों के सहारे और बैसाखियों से चलते है,
उनके लिए तुम मध्यान्ह सूर्य बन जाते हो।
तुम्हारी उपस्थिति की धूप में नहाता रहूँॠ
तुम्हारे चिन्हों की वर्षा मेरी ओर होती रहेॠ
बु(िमानों को और मेरी आलोचना करने दोॠ
क्योकि उन्होंने वो प्याला,
जिसमें हो तुम्हारी दुर्लभ हाला
कभी पिया ही नहीं।

शायद ये दृष्य और चिन्ह कभी-कभी आपको हास्यास्पद लगें।

छवियाँ मिटाना

सूर्यास्त के समय दूर नदी के किनारे एक निर्जन चट्टान पर अकेला बैठा था। आस-पास कोई नहीं था, मैंने बाँसुरी का स्वर छेड़ दिया। नौसिखिया होने के कारण बाँसुरी बेसुरी ही थी फिर भी मैं प्रसन्न और सहज था।

थोड़ी ही देर बाद जैसे ही मैंने पहाड़ियों के पीछे डूबते हुए सूरज को निहारने के लिए बाँसुरी बजाना बंद किया तो मैंने सुना कोई कह रहा है ''तुमने बजाना क्यों बंद कर दिया?''

आश्चर्य से मैं घूमा तो देखा होठों पर हँसी लिए तुम पास ही एक पत्थर पर बैठे हो।

मैंने झेंपते हुए पूछा ''क्या मेरे स्वर तुम्हें पसंद है?''

''वे प्यारे और सम्मोहक थे?''

''मुझे चिढ़ाओं मत! मेरे स्वरों की भला दुनिया मे कौन सराहना कर सकता है?''

''तुम, दूसरों के लिए- दुनिया के लिए बजा रहे थे?''

''नहीं बिल्कुल नहीं।''

''तो जब तुम किसी दूसरे के लिए नहीं बजा रहे होते हो तो बड़े सहज हो जाते हो। तुम अपने-आप में खो जाते हो और ऐसी स्थिति, जिसमें 'मैं' न हो, मुझे प्रसन्न करती है- इतना कि कभी-कभी मैं तुम्हारे हृदय से छलक पड़ता हूँ''।

''बहुत खूब। लेकिन ऐसी स्थिति में ज्यादा समय तक बने रहना सरल नहीं है। बल्कि मेरे लिए यह बड़ी समस्या है''।

''वे, जो मुझमें एकाग्रचित्त हैं, अपने सभी क्रियाकलापों में अपने मस्तिष्क का बोझ उतार फेंकते है। वे रात में शांति से सोते हैं तथा सुबह पूरी ताजगी लिए जागते हैं। ऐसे ही तुम क्यों नही करते''?

''लेकिन यह ऐसा ही है जैसे मुझे मुठ्ठी में आसमान थामने के लिए कहा जा रहा है।''

''यदि तुम इसके लिए कोशिश करते रहने का निर्णय लेते हो तो मैं तुम्हें

अपनी सहायता का आश्वासन देता हूँऋ तुम अपनी ओर से पूरा प्रयास करो। अपने हृदय में मेरी उपस्थिति ;सुषुप्तद्ध के प्रति सजग रहो। मैं जीवन का केन्द्र नहीं हूँ क्या?''

''तुम्हारे शब्दों पर मुझे विश्वास है, फिर भी अपने हृदय में इसकी निश्चितता का अनुभव नहीं कर पाता। लेकिन बौ(िक स्तर पर ही इसे स्वीकार कर पाता हूँ।''

''मैं तुम्हारी स्वीकारोक्ति से प्रसन्न हूँ। तुम्हारे इस सच्चे दृष्टिकोण से उन सत्यों को ग्रहण करना तुम्हारे लिए सरल होगा जो मैं तुम पर उद्घाटित करूँगा'' और चुपचाप तुम परे देखने लगो।

मैंने समझा कि तुम इस विषय में और कुछ नहीं कहना चाहते लेकिन मेरी तरफ फिर से देखते हुए तुमने मुझसे कोमलता से पूछा ''मेरे लिए क्या एक बार फिर से बाँसुरी बजाओगे?'' मैंने मना करते हुए सिर हिलाया।

मैंने कहा ''माफ करना। मैं सोचता हूँ कि तुम्हारी प्रभावशाली उपस्थिति में अब मैं उसी सहजता से न बजा सकूँगा''। बड़ी सहजता से तुमने उत्तर दिया ''ठीक है। मैं तो सुनने आया था लेकिन चूँकि अब तुम नहीं बजाओगे तो जाता हूँ''।

दूसरे क्षण तुम उठ खेड़े हुए। मेरी ओर नराजगी से देखने के बजाए तुमने मुझ पर ऐसी प्रेमभरी दृष्टि डाली जिसने मुझे मूर्ति के समान अविचलित सा बना दिया। तब तुम घुटने तक पानी में चलते हुए तट तक पहुँचे और ओझल हो गए। तुम्हारी चाल के सौन्दर्य से मैं मुग्ध था। हाथों का सहज स्वचालन, लगता था जैसे तुम्हारे अस्तित्व के उल्लासमय गायन के स्वर से तुम्हारे चारों ओर की हर वस्तु से वाद्य-यंत्रों के समान धुन बज रही हो।

पहाड़ी के पीछे छिपते सूर्य ने क्षितिज पर शानदार आभा बिखेर दी। मैंने अपनी बाँसुरी उठाईऋ लगा वह कह रही हो ''इस सरल से अनुरोध का मान न रखने में तुमने कितनी मूर्खता की''। इस सत्य ने मेरे हृदय को लज्जा और पीड़ा से भर दिया।

तुम्हारे सामने भी मैंने अपनी सम्माननीय छवि को बनाए रखाऋ मेरी कितनी दयनीय स्थिति थी। जब तुमने मुझसे सहज और प्राकृतिक होने की अपेक्षा की थी, तो मैंने विशिष्ट बनना चाहा था।

सच तो यह है कि जीवन तुम्हारी प्रसन्नता के लिए ऐसी छवियों को मिटाते

जाने का निरन्तर प्रयास होना चाहिए। किसी छवि की ओट में खुद को छिपाए रखना तुम्हारे और अपने बीच दूरी को बढ़ाना है। यह कितना मूर्खतापूर्ण है। लेकिन यही मैंने किया था।

बाँसुरी अब मेरी मेज पर है और तभी से मैंने इसे कभी नहीं बजाया। लेकिन जब मैं इसे देखता हूँ तो एक मौन-गीत कानों में गूँजता है। इसका सारांश है -

ए प्यारे मूर्ख। वह 'प्राकृतिक एक' हैऋ उसके साथ प्राकृतिक ही रहो
सम्मान की छवियों को पौंछ डालो।
उसे प्रसन्न करने का मार्ग कठिन नहीं।
बस जैसे तुम होऋ विनम्रता की नग्न छविऋ
वैसे ही रहो।

शायद यह वही मौन संदेश था जो मेरी बाँसुरी में अपने जाने से पहले, तुम छोड़ गए थे। इसकी कचोटती रागिनी अकसर मेरे अर्न्तमन को पीड़ा से भर देती है और छवियों का वह पर्दा, जो तुम्हें प्रसन्न करने में सबसे बाधक है- उतार फेंकने की याद दिलाती है।

भय से भयभीत न हो

एक कोमल चमकीली मुस्कान के साथ तुमने पूछा, ''कैसे हो?'' तुम्हारे अपनेपन से वशीभूत हो मैंने प्रश्न किया, ''तुम कैसे हो?'' स्वाभाविक, मोहक ढ़ंग से तुमने उत्तर दिया, ''मैं ठीक हूँ, अगर तुम ठीक अनुभव करते हो।''

अपने प्रति तुम्हारी चिंता देख मैंने भी उत्तर दिया ''मैं अब ठीक हूँ, पर जब तक तुम नहीं आए थे ठीक नहीं था।''

''क्यों''

''मुझे क्या चीज पेरशान कर रही थी उसे निडर होकर कहूँ''?

''क्यों नहीं?''

''देखो, तुमसे लगातार मिलते रहने के बाद भी मुझे लज्जा आती है कि समस्याएं ;परिस्थितियांद्ध अब भी मुझे प्रभावित कर जाती हैं। किसी न किसी प्रकार का डर बना रहता है। जबकि तुम्हारी ओर से प्रेम मे कतई कमी नहीं है और स्वार्थीपन अब भी मेरी प्रकृति मे बना हुआ है जबकि निस्वार्थ तुम ....''

''यद्यपि तुम्हारा प्रेम मेरे प्रति निरन्तर बना है फिर भी डर की छाया मेरे जीवन को डस रही है। मुझे डर है कि अपनी इन दुर्भावनाओं से मैं कभी मुक्त हो सकूँगा या नहीं?''

''क्या तुम्हें इनसे निवृत्ति पाने की जल्दी है?''

''हाँ। क्योंकि इन काली छायाओं के नीचे चलना वास्तव में बड़ा कठिन है।''

''समय के साम्राज्य में घटने वाली सभी घटनाओं से पार जाने के लिए समय की आवश्यकता है।''

''तुम्हारी क्या इच्छा है जो मैं करूँ?''

''सबसे पहले तो मैं तुम्हारा ध्यान इस ओर दिलाना चाहूँगा कि अपने भयों से भयभीत होने की कोई आवश्यकता नहीं। इसके बजाए तुम्हें मेरे स्मरण में ज्यादा जागरूक रहने का प्रयत्न करना चाहिए .... निभर्य होने का लक्ष्य मत बनाओ क्योंकि जो भी तुम अपने प्रयत्न से प्राप्त करोगे वह बिखर जाएगा। लेकिन तुम वें भय यदि मुझे अर्पित कर दोगे तो वही सौभाग्य में परिवर्तन हो

जायेगें। ''तुम जो कह रहे हो उसे मैं पूरी तरह समझ नहीं पा रहा हूँ, फिर भी मैं अपने स्वार्थीपन की आदत से छुटकारा पाने के बारे में तुमसे सुनना चाहता हूँ।''

''क्या किसी के लिए भी स्वार्थी वृत्ति से पूरी तरह अलग हो पाना संभव है? किसी कर्म के लिए 'निस्वार्थ' शब्द कह देने से न तो वह कर्म निःस्वार्थ हो जाता है और न समस्या का समाधान हो पता है।''

''तो फिर क्या है समाधान?''

''अपने विचार तथा कर्म- चाहे वे तुम्हारी नजर में कितने भी साधारण और तुच्छ क्यों न प्रतीत हों- उनमें सम्मिलित होने हेतु मुझे आमंत्रित करो। तब मैं केवल तुम्हारी स्वार्थपरता की गाँठ ही नहीं खोलूगाँ बल्कि धीरे-धीरे अवचेतन रूप से तुम्हारी स्वार्थपरता का मेरे अनन्त-स्वार्थ में विलय होना शुरू हो जाएगा।'' ''मात्र मेरी पुकार पर मेरे दिन-प्रतिदिन के कार्यों में सम्मिलित होने तुम दौड़ चले आओगे''?

''हाँ, यदि पुकार ह्रदय की होऋ तब मुझे तुम्हारे क्रियाकलापों में शामिल होने का कोई माध्यम मिल जाएगा और तुम्हारे क्रियाकलापों में भाग लेने के लिए मुझे अवकाश ;स्थानद्ध मिल जाएगा। जब कभी भी तुम मेरे साथ सहयोग करते हो तो मेरे लिए यही प्रसन्नता की बात होती है कि मुझे मेरी अपनी ही सचेतन इच्छा के प्रति तुम्हें जाग्रत करने का बहाना और मौका मिल जाता है।''

''इन सभी वार्तालापों के बावजूद भी, क्षमा करो, मैं अब भी सशंय में हूँ कि अपनी शारीरिक और मानसिक भय की स्थिति से कैसे निपटूँ?''

''आओ स्थितियों को हम दूसरी तरह से देखें .... क्या तुम इस समय भी डर रहे हो?''

''तुम्हारी उपस्थिति में नहीं?''

''तो केवल मेरी सशरीर उपस्थिति से क्यों जुड़ते हो? क्योंकि मैं अदृष्य रूप में भी उपस्थित हूँ। कोशिश क्यों नहीं करते और सीखने का प्रयास क्यों नहीं करते मेरी उपस्थिति को तुम मेरा नाम लेकर भी अनुभव कर सको''।

''आसान तो नहीं।''

''कठिन भी नहीं। हाँलाकि यह सच है कि यह सीखने-सिखाने वाली कला नहीं है। भरसक प्रयत्न करके भी तुम्हें कुछ नहीं मिलेगा। ''

''तो यह कठिन होने से भी कुछ अधिक है''?

''लेकिन साथ ही सरल से भी अधिक सरल'' और तुम्हारी आँखें टिमटिमाने लगी।

''क्या मेरे लिए कभी कोई आशा है?''

''किसी समय, एक क्षण मात्र में, मैं तुम्हें यह उपहार दूँगा''।

''कब''?

''इसका कोई इशारा नहीं। इसे किसी गणित का ज्ञान नही।''

''जो तुम कहते हो, उसे न मानना कठिन है। फिर भी मुझे यह मानना ही होगा कि तुम्हारा 'गणित' भी इतना ही कठिन है जितना तुम्हारा 'शब्दकोष''।

इस टिप्पणी पर तुम खुलकर हँस पड़ेऋ तुम्हारे मुख पर सुखकर मुस्कान थी। तुमने वार्तालाप को समाप्त करते हुए कहा, ''आज के लिए इतना ही काफी है। अब मुझे अपने काम पर जाना है। फिर मिलते हैं''। मैं कहने को हुआऋ ''भयों से निर्भय होने का उपहार मुझे देने जल्दी आना''। परन्तु उसी क्षण मेरे हृदय में धीमी आवाज में तुम्हारी ''ठीक है'' की ध्वनि गूँज उठी।

''तुम्हारी समयब(ता सटीक हैऋ तुमसे देर कभी नहीं होती''।

किसी और दिन

उस दिन तुम बहुत सुंदर लग रहे थे- सौन्दर्य की साक्षात् मूर्ति। तुम्हारे चमकीले रूप को आदर और भय से देखते मैं उत्तसुक था कि क्या यह रूप तुम्हारे दैदीप्यमान स्वरूप को सभांल पा रहा होगा। तुम्हें एकटक देखता था। मेरे नेत्र तुम्हारे रूप के सम्मोहन में बंध गए थे।

मैंने तुम्हारे बोलने की आशा नहीं की थीऋ उस मौन के साम्राज्य में सभी शब्दों के साथ मेरे विचार भी मानो डूब गए थे। इस पर भी तुमने शांति भंग करते हुए मुझसे पूछा, ''तुम मुझे प्रेम करते हो या मेरे रूप को?'' प्रश्न ने मुझे सशंय में डाल दिया इसलिए मैंने उत्तर दिया, ''यह उन बहुत सारे प्रश्नों में से एक है जिनके उत्तर मुझे नहीं पता है।''

तुम हँसे, लेकिन गंभीरता से कहते हुए, ''तो समझ लो। मुझे प्यार करो, मेरे रूप को नहीं। मैं अ-रूप हूँ।''

''हाँ। मैंने धीरे से कहा, ''लेकिन क्या तुम्हारा रूप अ-रूपता के योग का प्रतीक नहीं है?''

''हाँ''। तुमने स्वीकार किया, ''लेकिन तभी तक जब तक तुम रूप से ढके हो, उसमें बंधे नहीं हो। मैं तो अ-रूपता से भी परे हूँ। मेरा आवास 'परा' में है जिसका शब्दों में वर्णन करना मेरे लिए भी परे है।

''कृपया वर्णन न करो। लेकिन इतना बताओ कि कोई तुम्हारे रूप से, जो अनन्त सौन्दर्यवान और ऐश्वर्यवान है, से कैसे अप्रभावित हो सकता है। तुम्हारे रूप के माध्यम से ही मैं तुम्हें प्यार करता हूँ, परा-स्थिति तुम्हारा कार्यक्षेत्र है। वह मेरी समझ की सीमा से कहीं अधिक है। मैं तुम्हारे प्रेम-उपहार, जो तुमने मुझे दिया है, से सन्तुष्ट हूँ। क्या इस प्रेम में तुम्हारी परा की अन्नतता नहीं समा सकती है''?

थोड़ी देर तुम चुप रहे। तब तुमने केवल तीन शब्द कहे ''किसी और दिन'' और मेरे ऊपर एक भोली सी दृष्टि डाल तुम चले गए।

मैं अब भी आश्चर्यचकित हूँ कि तुम परात्पर, सर्वत्र, देखने में इतने सरल और भोले कैसे लगते हो। फिर मुझे आश्चर्य है कि क्या यह विचारों में शब्दों का

खेल है या विचारों का शब्दों के माध्यम से अभिनय है? या यह तुम्हारे और मेरे खेल का ही एक भाग है?

सम्भवतः यदि तुम्हारी इच्छा होगी, तो तुम इस दुविधा का सामाधान कर दोगे ''किसी और दिन''।

एकमेव जाग्रत के स्वप्न में 'स्वप्न'

परिवार जनो और मित्रों से धोखा खाया हुआ, दुनियां के तौर, तरीकों से दुखी, मैंने घर छोड़ दिया। बहुत-बहुत लंबी यात्रा के बाद मैं कांटों और पत्थरों से भरे एक सुनसान स्थान पर पहुँचा। सूर्य आकाश में चढ़ आया था और आग बरसा रहा था लेकिन प्यास से दुखी मैं चलता ही जा रहा था। पानी या पेड़-पौधों का कहीं दूर-दूर तक अता-पता नहीं था। अंत में मैं पूरी तरह असहाय और हताश हो गया।

हताशा से जोर से चीखा ''कहां हो तुम''? और मुझे घोर आश्चर्य में डालते हुए ''कहां हो तुम'' शब्द प्रतिध्वनित हो लौट आए। यह कैसे हुआ? मेरी समझ में यह नहीं आया कि यह प्रतिध्वनि कैसे हुई, क्योंकि वहां ध्वनि परावर्तन के लिए पहाड़ियां थी ही नहीं। जहां तक दृष्टि जाती सूखा और बियाबान फैला था। फिर भी मैंने आँखें मिचमिचाकर देखा दूर क्षितिज पर एक काले बिंदु जैसे उभार पर मेरा ध्यान गया और मैं किसी अनिश्चित कारण से उस ओर आकर्षित हुआ इसी आकर्षण में मैं उस बिंदु की ओर चल पड़ा। पास जाकर देखा, वह एक टूटी-फूटी झोपड़ी थी।

इसे किसने यहां बनाया होगा और क्यों? क्या मुझे उसके कमजोर दरवाजे खटखटाने चाहिए या नहीं? मैं निर्णय नहीं कर सका।

अंत मे कुछ हिचकिचते हुए मैंने दरवाजे को हल्का सा धक्का दिया, जो खुल गया। मेरे अश्चर्य की सीमा न रही- मैंने तुम्हें आराम से बगल में एक जग ठंडा पानी और एक गिलास रखे बैठे देखा।

आश्चर्य से मैं चिल्ला पड़ा, ''यहां तुम्हारे आने की मुझे आशा नहीं थी। ''

तुम मुस्कुराए और बोले, ''मुझे भी'' और कहते गये, ''तुमने मुझे निराशा और असहाय भाव से पुकारा था न?''

''हाँ, क्योंकि वास्तव में बहुत निराश और असहाय था।''

''ह्रदय से निकली किसी प्रकार का प्रत्युत्तर भला मैं कैसे न देता? मुझे इस जीर्ण-शीर्ण झोपड़ी में तुम्हारी पुकार पर आना पड़ा।''

तुमने स्नेहपूर्वक गिलास मे थोड़ा पानी डाला और मुझे पीने के लिए दिया। मैं गिलास हाथ मे पकड़े, तुम्हें कृतज्ञता से देखते हुए भावुक हो गया।

''चलो'' तुमने आज्ञा दी, ''पहले अपनी प्यास बुझाओं फिर तुम्हारे मन में जो हो उसे कह डालो।''

''पानी का पहला घूँट पीने से पहले मुझे एक प्रश्न करने दो। ''

''तुम्हारे विचित्र व्यवहार को मैं जानता हूँ। पूछो क्या प्रश्न है? ''

''क्या तुमने मेरा प्रश्न प्रतिध्वनित किया था?'' ''हाँ, वह तुम्हारे ह्रदय मे मेरी उपस्थिति का प्रत्युत्तर था। क्या तुम्हें इस स्थान के लिए विशेष खिचांव नहीं अनुभव हुआ था?'' प्रतिध्वनि का अर्थ था 'तुम' कहां हो? मैं यहां हूँ।'' प्रेमभरी गंभीर वाणी में तुम कहते गए, ''जब मुझे पुकारा जाता है तो मैं वही हो जाता हूँ जो समझ कर मुझे पुकारा जाता है। फिर भी मैं, 'हो जाने' से परे हूँ।

जैसे मैंने घूँट भरने के लिए गिलास होठों से लगाया, उसमें दो बूँद मेरे आँसू टपक गए। पीकर मैंने गिलास चटाई पर रख दिया और रूंधे गले से बोला, ''हाँ, यह तुम्हारी करूणामयी उपस्थिति ही थी जो मुझे यहां खींच लाई।'' फिर कहा ''इन कुछ बूँदों को पीने से थोड़ी ताजगी और शक्ति महसूस कर रहा हूँ, फिर भी मैं चाहता हूँ कि दुनिया सदा के लिए छोड़ देने में मेरी भलाई है क्योंकि सचमुच मैं इससे बहुत थक गया हूँ।''

''लेकिन अपने आपसे नहीं थके''? तुमने मजाक किया और कहा, ''तुम दुनिया से भाग सकते हो परन्तु तुम जहां भी रहो यह तुम्हारा पीछा निरंतर करती रहेगी।''

''तो मुझे क्या करना चाहिए?'' मैंने पूछा। बिना एकपल रूके तुम बोल उठे ''थकान और कुंठा से उत्पन्न निराशा, कठिनाईयों से आमना-सामना न कर पाने के कारण तुम्हारी यह स्थिति है। यह केवल शारीरिक और मानसिक दुख से उभरी निराशा और असन्तुलन के कारण है। ऐसी मनोदशा स्थाई नहीं होती। ''

मैंने अचंभे से सिर हिलाते हुए पूछा ''तो हल क्या है''? क्या तुम मुझसे अप्रसन्न हो?''

''अप्रसन्न नहीं, लेकिन प्रसन्न भी नहीं हूँ। ''

''अब तो और भ्रम में हूँ। आखिर जीवन में कौन सा मार्ग चुनूँ? क्या चाहते

हो, शहर में जाकर कोई कामकाज करूँ?''

''सुनो, मेरे शब्दों को सुनो, परन्तु वही कार्य करो जो तुम्हारा ह्रदय ईमानदारी से कहे। वरना तुम्हारा मस्तिष्क, असन्तोष या दूषित ;मिलावटीद्ध जानकर छोड़ी गई वस्तुओं के गुण-दोषों की बारीकी से विवेचना करता रहेगा। तुम नगर का त्याग कर सकते हो, लेकिन तुम नगर के आवासों और भवनों के मोह को नहीं भूल पाओगे। इन मोह से जुड़ी यादों का बोझ तुम्हारे लिए असहनीय हो जाएगा। इससे जीवन का चेतना का प्रवाह रूक जाता है। ''

मैं अधीर हो कह उठा ''लेकिन लोग त्यागमय एकान्त जीवन व्यतीत करते हैं। मैं भी उन्हीं की तरह रहना चाहता हूँ।''

''दूसरों का अनुकरण करने से बचना चाहिए।'' तुम कहते गए, ''कुछ लोगों के लिए संसार का या सांसारिक जीवन का त्याग करना इतना ही सहज होता है जैसे पके फल पेड़ को छोड़कर धरती पर जा गिरते हैं। तुम्हारे अनुभव विचारों से फुलाए गुब्बारे की तरह हैं, जिनमें विचार और मान्यताओं की हवा भरी है। वे तुम्हारे अनुभवों से बुने होते हैं। तुम्हारे जीवन का स्रोत ही वह चेतना-प्रवाह है जो मुझमें अर्थात सत्य-जीवन मे मिल जाने की यात्रा का मार्ग है। ''

''मुझे इस सत्य-जीवन के बारे मे कुछ बताओगे?''

''यह जुबानी बातचीत से परे है।''

''तो तुम मुझसे इसकी बात क्यों करते हो?''

''मैं बिना कारण कुछ नहीं कहता। बल्कि यह तुम्हें जगाने की विधि का एक अंग है। यह तुम्हारे विचारों और जिस संसार में तुम रहते हो, उसके नाशवान होने का ज्ञान कराता है। इसके साथ ही मेरे शब्द तुम्हें अपने अन्तर में मेरी उपस्थिति के प्रति ज्यादा से ज्यादा जागरूक करते हैं।''

''तो क्या यह कहना चाहते हो कि जिस स्थिति मे मैं गुजर रहा हूँ वह बेकार का खेल है- मेरे मस्तिष्क का स्वप्न है?''

''बिल्कुल सही अब चाहे इस सच को खुशी से मान लो या दुखी होकर। लेकिन यही सही है। क्या इस बात का विश्वास करना चाहोगे?''

मैंने नम्रता से उत्तर दिया, ''यदि तुम इसकी एक झलक भी दिखा सको तो मैं तुम्हारा आभारी होऊँगा। ''

''तो झोपडी से चलो।'' तुमने कहा और उठ खड़े हुए। मुझे बाहर बुला कर तुमने आकाश की तरफ इशारा किया! अरे यह क्या? दोपहर के बजाए आकाश में पूरा चाँद था। अचानक बिजली कड़क उठी और मैं अपने बिस्तर में सोया जाग पड़ा।

खिड़की से पूरा चाँद झाँक रहा थाऋ वह खुशी से मुस्कुराता सा लगा। संयोगवश, दूर बिजली चमकी।

''क्या फन्तासी है? मैं जगा हूँ या स्वप्न देख रहा हूँ? 'यह' स्वप्न है या 'वह' सब स्वप्न था?''

जाग्रति की सुखद अनुभूति से मैं बिस्तर मे कुछ देर लेटा रहा। ऐसा लग रहा था जैसे दूर तक पसरे, नीले और मौन आकाश का विराट साम्राज्य मेरे अन्दर उतर आया हो।

लेकिन फिर से मन में विचार आने लगे। ऐसा लगा जैसे मैं तुमसे बात कर रहा हूँ -

''मेरे जीवन के दोनों स्वप्न-आयामों ;दृष्टिकोणोंद्ध से होकर गुजरने वाली रेखाओं के स्पर्श बिंदु पर क्या मैं स्थिर हो सकूँगा। लेकिन कौन जानता है? हो सकता है वह मुझे और भ्रमित कर दे। बेशक मैं जानता हूँ कि तुम मुझे भ्रामक और स्पष्ट दोनों स्थितियों में समान रूप से सहायता करते हो। यदि कोई समाधान है तो वह है तुम्हारी कृपा-एकमेव जागृति, मेरे अन्तर में जागती हुई।''

कितना भी प्रयास करूँ, मैं इन दोनों आयामों ;एक-दूसरे से मिलती-जुलती स्वप्न की स्थितिद्ध में सामंजस्य नहीं बैठा पाता। क्या मेरा जीवन उस एकमेव की जागृति का स्वप्न है या मेरे अन्तर मे स्थित एकमेव जागृत का रचा हुआ स्वप्न? वही बेहतर जानता है।

कैसी असंभव प्रत्याशा ;अपेक्षाद्ध

एक दिन ठंडे पानी से स्नान करते समय मैं बहुत ताज़गी का अनुभव कर रहा था। जब मैं स्नान पूर्ण कर शरीर में विश्राम महसूस कर रहा था तो लगा जैसे भूतकाल से मेरा लगाव और भविष्य की सभी इच्छाएं भी, पानी के साथ धुल गई हों और समय थम सा गया हो। प्रसन्नता में डूबा मैं कमरे में घुसा तो तुम्हें अपनी ओर बैठे कोमलता से मुस्कुराते देखा। कैसा आश्चर्य! मैं अपनी खुशी को रोक न सका और बोला ''मेरा इंतजार कर रहे थे?''

''और क्या?'' तुम्हारा मीठा सा जबाब था''

''आज मुझे तुम्हारे आने की आशा नहीं थी।''

''और यही कारण है कि तुम मुझे यहां बैठा देख रहो हो। प्रत्याशाएं या अपेक्षांए मुझे दूर करती हैं।''

''लेकिन आशाओं के पूरी तरह अनुपस्थित होते ही उसी क्षण तुम कैसे प्रकट हो जाते हो?''

''क्योंकि मैं सर्वकालिक, सर्वव्यापी हूँ''। बातचीत जारी रखते हुए मैंने पूछा ''और सब में भी?''

''मैं सब में न केवल हूँ, बल्कि मैं ही सब वस्तु हूँ। परन्तु यह बहुत बारीक और बहुत गहरा विषय है जिसकी चर्चा मैं आज नहीं करना चाहूँगा।''

''कृपया किसी भी दिन इसकी चर्चा में न जाओ। मेरी रूचि तो केवल तुम और तुम्हारे सानिध्य में है। यदि कोई इतना सौभाग्यशाली हो कि सम्राट उसका मित्र बन जाए तो फिर, वह मित्र कैसे बना इसकी यात्रा के वर्णन में जाने की क्या जरूरत है? तुम मेरे एक और एकमात्र सम्राट हो।''

''मैं अपने ऐक्य की स्थिति का वर्णन तुमसे कैसे करूँ?'' मैं सम्राट भी हूँ और अपने ओर की यात्रा भी हूँ। मैं सभी वस्तुओं के अस्तित्व का सूक्ष्म-मूल-बिंदु भी हूँ। मैं सदा जीवन्त, चमकदार, वह केन्द्र बिंदु हूँ, जिसके चारों तरफ जीवन का हर आयाम घूमता रहता है।''

''कैसे पहुँचू तुम तक अपने अंदर स्थित केन्द्रक- तुम तक? ''

"मार्ग ही मार्ग है। मुझ तक पहुँचने वाले मार्ग की खोज में मैं हर एक ही प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सहायता करता हूँ। जहां तक तुम्हारा प्रश्न है बिना किसी आशा या अपेक्षा के मेरा पूर्ण हृदय से स्मरण करो और तुम केन्द्रक के नजदीक से नजदीक पहुँचते जाओगे।"

"मुझे स्वीकार करना होगा कि यह "पूर्णहृदय" का मसला तुम तक मेरी यात्रा में बड़ी रूकावट होगा।"

"घबराओ नहीं। सही दृष्टिकोण रखने में मैं सहायक होऊँगा। जैसे अलग-अलग कार्यों को करने पर आश्रित होने के बजाए अपनी क्रियाएं मुझे समर्पित करते जाओ। इससे तुम्हारे हृदय में मेरी उपस्थिति मानो झरना बनकर बहने लगेगी। अपनी क्रियाओं मे मेरी सहभागिता और उसमें तुम्हारी आस्था, धीरे-धीरे मेरी उपस्थिति रूपी जलयंत्र का मुख्य संचार का दरवाजा खोल देगी .... "

"और मैं तुम्हारी संजीवनी जल की फुहारों में भीग उठूँगा"? तुम्हारे नेत्रों ने हास्य किया,

"निःसंदेह।" तुम जैसे ही जाने के लिए तैयार हुए मैं पूछे बिना नहीं रह सका,

"क्या कल फिर आओगे?"

"पूर्वानुमान मत करोऋ प्रत्याशा ;अपेक्षाद्ध न रखो।" तुमने उत्तर दिया।

"क्या नहीं जानते कि, मैं न तो बीते हुए कल में रहा हूँ न आने वाले कल में? मैं 'वर्तमान', 'अभी' मे हूँ।" मेरा दिमाग चक्कर खा रहा था फिर भी मैं हठ करता रहा, "अ-रूप होते हुए भी मेरे प्यार के वशीभूत तुमने रूप ;शरीरद्ध धारण किया। इसी प्रकार कालविहीन होते हुए भी क्या तुम्हारा आगमन मेरे आने वाले कल में नहीं होगा? "

तुमने मेरी तरफ मुस्कुरा कर देखा लेकिन मुस्कुराहट से यह प्रकट नहीं हुआ कि तुमने मेरा अनुरोध मान लिया था या नहीं?

अब कोई अन्तर नहीं पड़ता

हाँ, मैं थक गया हूँ, बहुधा संत्रस्त भी,
हाँ, कभी-कभार जीवन्त और उन्मुक्त भी अनुभव करता हूँ। क्यों?
मैं नहीं जानता, लेकिन अब इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता।

चाहे मैं तुम्हारी ओर बेढंगी क्षिप्रता ;चालद्ध से दौड़ता हूँ,
या तुम्हीं जल्दी-जल्दी मेरे निकटतर आते जा रहे हो,
मैं नहीं जानता, लेकिन अब इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता।

चाहे तुम बाँहें पसारे मुझे आमंत्रित कर रहे हो "जल्दी आओ"
या मैं तुम्हारे आलिंगन में आने में संकोच कर रहा हूँ,
मैं नहीं जानता, लेकिन अब इससे कोई अंतर नहीं पड़ता।

या तो यह मैं हूँ जो गोता लगाने ही वाला हूँ
या तो तुम हो जो मुझे खींच लेने का संकल्प लेते हों
मैं नहीं जानता, लेकिन अब इससे कोई अंतर नहीं पड़ता।

तुम्हारा आलिंगन मेरे जीवन का सर्वोत्तम धन्य क्षण था,
तब से मुझे शिकायत नहीं करनी चाहिए लेकिन मैं करता हूँ, क्यों?
मैं नहीं जानता, लेकिन अब इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

चाहे यह तुम्हारा स्नेह है जो मुझे स्फूर्ति प्रदान करता है
या तुम्हारे प्रेम की ज्वाला है जो मुझे भयभीत करती है,
मैं नहीं जानता, लेकिन अब इससे कोई अंतर नहीं पड़ता।

चाहे यह तुम्हारा प्रेम है जो मुझे धारण करता है
या तुम्हारा प्रेम है जो मुझे चुका देता है,
मैं नहीं जानता, लेकिन अब इससे कोई अंतर नहीं पड़ता।

यह सब तुम्हारा मेरे साथ आजीवन खेल है
या तुम्हारे साथ मेरा मूर्खतापूर्ण खेल,
मैं नहीं जानता, लेकिन अब इससे अंतर नहीं पड़ता।

मैं नहीं जानता और अच्छा है कि नहीं जानता,
क्योंकि महत्वपूर्ण वो है जो तुम जानते हो
लेकिन इसके बारे में सोचना भी क्यों?
मैं नहीं जानता लेकिन अब तो सचमुच इससे फर्क नहीं पड़ता।

मुझे प्रसन्न करो

अपने कमरे में अन्दर आते ही, आँखों में ताजगी लिए, राजसी मुद्रा में खिड़की के पास तुम्हें बैठा देखकर मैं आश्चर्यचकित रह गया। मेरे कुछ कहने से पहले ही तुम गंभीर वाणी में बोले और तुम्हारी वाणी ने मेरे हृदय को गहराई तक छुआ-

''मुझे प्रसन्न करो अधिक और अधिक,
अधिक से अधिक मुझ पर निर्भर रहकर''।

एक सूक्ष्म संदेश जिसके लिए मैं उस क्षण तैयार नहीं था। लगता है ध्यान देने योग्य, महत्वपूर्ण बातें, तुम्हें मुझसे उसी क्षण बताने की आदत सी है जब मैं उन्हें सुनने की आशा नहीं करता। तुम्हारे कृपापूर्ण आगमन का बार-बार धन्यवाद है कि मैं बिना कुछ छुपाए सहज और खरे भाव से तुम्हें उत्तर देता हूँ। सहज उत्तर देना मेरी आदत बन गई है। इसलिए बिना सोचे मैं बोल उठा,

''तुम्हें क्यों प्रसन्न करूँ''?

मेरे बाल-बोध ;सीमित ज्ञानद्ध को चपत लगाते हुए, तुम्हारे शांत उत्तर ने मुझे आश्चर्य में डाल दिया। तुमने कहा, ''जिससे तुम, 'मैं' बन सको''। मैं कठिनाई से बोला, ''क्या! लेकिन यह तो बहुत अधिक है। यह सच है कि जब-जब तुम आते हो मैं बहुत बहुत प्रसन्न होता हूँ, परन्तु मैंने कभी ऐसा नहीं सोचा कि मैं 'तुम' या 'तुम जैसा' बन सकूँ और न मैं ऐसा चाहता हूँ''।

उसी गंभीरता से तुमने मुझे उत्तर दिया, ''देखो, तुम या कोई और, चाहे या न चाहे, प्रत्येक को मुझसा बनाना होगा अर्थात मुझमें समाना ही होगा''।

मेरे लिए इसे स्वीकार करना मुश्किल था। मैंने कहा ''कोई आश्चर्य नहीं कि कुछ लोग तुम्हें परम अंहकारी कहते हैं लेकिन मैं, 'मैं' ;**Self**द्ध बनना चाहता हूँ, कुछ और नहीं''। तुम मुस्कुराए, ''यही तो मेरा तात्पर्य है। मेरे परम एकत्व में द्वैत का स्थान नहीं है। इसलिए तुम्हें किसी दिन मुझसा बनना ही होगा।'' ''लेकिन क्यों?'' मैंने प्रतिवाद किया।

''क्योकि तुम्हारे अज्ञानमय 'मैं' में, मैं स्त्यरूप ''तुम'' हूँ''। यह वार्तालाप जबकि बहुत छोटा था लेकिन इसने मेरे ऊपर जादू सा कर दिया। हाँलाकि इससे बाहर निकलने की कोशिश में मैंने, तुम्हारे कहे गए शब्दों में, तर्क ढूंढना चाहा। मैंने

पूछा ''तुम्हारे साथ 'एक्य' और ''तुम्हारी प्रसन्नता'' का तुम आपस में क्या सम्बन्ध ा बताते हो।''

तुमने स्पष्ट करते हुए बताया ''सम्बन्ध यह है कि ''झूठा मैं'', जिससे चिपके रहने के लिए तुम बहुत प्रयास करते हो, मेरी प्रसन्नता से वह नष्ट हो सकता है। शरीर और मन के कारण अपने को ही सत्य समझने वाली दीवारें छिलके की तरह छूटने लगती हैं। नहीं जानते कि तुम मेरे बिना एक कदम चल नहीं सकते या एक उँगली तक नहीं हिला सकते हो। सारे विचार, अनुभव, हलचल मुझ में केन्द्रित हैं, जिनसे वें तुम्हारे द्वारा कार्यान्वित होते हैं।''

तुम ठहरे, कोमल लेकिन भेदने वाली दृष्टि तुमने मुझ पर डाली। तुमने कहना शुरू किया ''अन्ततः, तुम हो क्या? तुम्हारा जीवन घड़ी-यंत्र के नीचे का खाली सा पात्र है। पात्र तथा खालीपन ;आकाशद्ध मेरे द्वारा धारण किए गए हैं।''

विमूढ़ सा मैं बुदबुदाया, ''इतना जटिल अस्तित्व हूँ मैं? ''

''जितनी कल्पना कर सकते हो उससे भी अधिक जटिल और पहेली के समान। तुम्हारे अस्तित्व के अलग-अलग आयामों में से केवल एक के बारे में बताया है जिससे तुम्हारी प्रतिक्रिया जान सकूँ। तुम्हें, इनमें से प्रत्येक आयाम में से होकर गुज़रना है।'' तुमने कनखियों से मुझे देखा।

हे भगवान! मैं तुम्हारी बात एकाग्रचित होकर सुन रहा था। कह नहीं सकता कि तुमहारी बातों मे से कितना मैं समझ पाया। फिर भी मेरे अन्दर एक विचित्र सा परिवर्तन हुआ, मस्तिष्क जैसे अचानक सुन्न सा हो गया। तुम्हारे शब्द मेरी समझ से परे गूँज रहे थेऋ लेकिन फिर भी उनकी शब्दहीन सुगंध का आभास मेरे हृदय में हो रहा था। इस कोमल स्पर्श से मुझे अपने प्रश्न की व्यर्थता का आभास हुआ। मैंने पूछा ''मेरे प्रश्नों से तुम नाराज तो नहीं हुए? तुमसे घनिष्ठता का अनुचित लाभ उठाने के लिए क्षमा करना।''

तुमने विनम्रता से मेरी तरफ अति प्रसन्न मुस्कान फेंकी, ''बिल्कुल नहीं।

जब भी कोई मेरे सामने एकदम अपनेपन के भाव से अपना हृदय खोलता है तो मैं सुखी होता हूँ, दुखी या उदास नहीं।'' इसके साथ तुम खड़े हो गए, ''अच्छा बहुत बात हो गई। तुम खुश तो हो? अब मेरा जाना ठीक रहेगा न?'' तुम्हारी, अपने लिए इस उदारता ने, मुझे भावविभोर कर दिया और मैं रूँधे गले से कह सका,

''अपनी इच्छा को मेरी प्रसन्नता बन जाने दो''।

''बहुत अच्छे, इसे सुनकर मैं प्रसन्न हुआ''।

''लेकिन, एक बात ....''

तुम मेरे आगे बोलने की प्रतीक्षा में मेरी तरफ देखते रहे। मैंने साहस इकठ्ठा करके कहा ''अच्छा तुमने अपने संदेश के प्रथम हिस्से - ''मुझे प्रसन्न करो, अधिक और अधिक'' की व्याख्या तो कर दी, लेकिन बाद वाले हिस्से- ''अधिक से अधिक मुझ पर निर्भर रह कर'' का क्या? यह बाद वाला हिस्सा मेरे दैनिक जीवन के ज्यादा नजदीक जान पड़ता है।''

मुखमंडल पर कौतुहल के लेकिन विनम्र भाव उभरे और तुमने उत्तर दिया, ''मैं तुम्हारे बाहरी दृष्टिकोण की ही नहीं, अर्न्तदृष्टि की भी सराहना करता हूँ। मैं तुम्हें वचन देता हूँ कि जिस क्षण तुम्हारा ह्रदय पूरी तरह ग्रहण करने योग्य होगा, उसी क्षण मेरे आने में जरा भी देर न होगी।'' फिर आभामय मुद्रा में जोड़ा ''और जानते ही हो कि मैं पूरा अर्थशास्त्री ;बनियाद्ध हूँ''।

''और शायद बहुत अपव्ययी भी'' मैंने चुटकी ली। तुम जानते हो कि, तुम मेरे पास बार-बार आते रहते हो, मैं उसका आभार व्यक्त कर रहा था। इसलिए तुम मुस्कुराए और तुम्हारी नजरों के एक तीर ने मेरा ह्रदय घायल कर दिया।

''मैं जो भी हूँ। लेकिन जब तुमने पूछा है तो बताने में मेरी भी रूचि है। बहुत महत्वहीन से, छोटे-क्रियाकलापों से शुरू करते हुए उससे भी छोटे से छोटे क्रियाकलाप में मेरे ऊपर निर्भर रहना सीखो। कुछ भी हो हर छोटी सी बात, चाहे शरीर या मन की किसी भी क्रिया में सहगामी होना मुझे अतिप्रिय है।

यह तुम्हारी समस्याओं के समाधान की कुंजी ;चाबीद्ध है। इसलिए चलो इसका लाभ उठाओ, इसका प्रयोग करो। मैं अब चलता हूँ लेकिन भूलना मत कि मैं तुम्हारे दैनिक जीवन में साथ रहने के लिए सदा तत्पर हूँ।''

''हम अलग हुएऋ लेकिन एक प्रकार से नहीं भी, क्योकि तुम्हारी उपस्थिति अधिक अंतरंग और अधिक तीव्र हो गई। गहरी सोच में डूबा मैं अपने कमरे के आगे-पीछे टहलने लगा। तब तुम्हारे कहने का अर्थ मुझे समझ आया कि मैं तुम्हें पुकारे बिना उँगली तक नहीं हिला सकता था। तुम्हारे ऊपर निर्भर हुए बिना एक

कदम तक नहीं बढ़ा सकता था। ऐसा लग रहा था जैसे मैं तुम्हारी कृपा से 'तुम में, अर्थात इच्छा के आधीन चल रहा होऊँ। लेकिन इस आनन्दमय निर्भरता की स्थिति ज्यादा दिनों तक नहीं रही। ऐसे अमूल्य और गूढ़ अनुभव पाने के बाद भी, मुझे यह कहते हुए संकोच हो रहा है कि तुम एकमेव सत्य में मैं, अपना पूरा विश्वास रख पाने में लगातार असफल हो रहा हूँ। मूर्खतापूर्वक और बार-बार अंहकार अपना झूठा महत्व दिखा बैठता है।

इस पर भी, जब मेरी शारीरिक और मानसिक, विचार एवं अनुभवों की बेड़िया कसने लगती हैं और जीवन को ढक लेती है, तो मैं तुम्हें स्मरण करता हूँ या शायद अपनी दया भावना के कारण तुम ही, स्वयं को पुकारने की प्रेरणा देते हो। उसी क्षण तुम्हारे ज्ञान से आलोकित वे बारह शब्द संगीतमय तरंग बन कर मेरे ह्रदय में गायन करने लगते है -

प्रसन्न करो मुझे अधिकाधिक,

मुझ पर अधिकाधिक निर्भर बन।

तुम्हारे प्रेमपूर्ण आदेश की पवित्रता और उसे समझाने का सहज ढंग यह याद दिलाता है कि इसमें मेरे और तुम्हारे सम्बन्ध की कुंजी ;चाबीद्ध छुपी है।

''तुम पर अधिकाधिक निर्भर'' बनने की गहन इच्छा मेरे जीवन की अंतिम साँस तक बनी रहे।

उबासी तुम्हारी मुस्कान में घुल जाती है

तत्परता से तुम्हें बुलाकर कुर्सी पर बैठने का संकेत कर मैंने कहा, ''बहुत ही अच्छा हुआ कि तुम ऐन समय पर आ गए। यह दिन इतना गर्म और नम है कि बड़ी ऊब हो रही थी।''

हल्की मुस्कान के साथ तुमने स्थान ग्रहण किया। तुमने कहा ''यह मेरी विचित्र आदत है कि जब मुझे लोगों द्वारा स्मरण किया या पुकारा नहीं जाता, तो भी मैं उनसे मिलने जाता हूँ। ''तुम्हारी यही मनमौजी आदत मेरे जैसे साधारण व्यक्तियों के लिए वरदान की तरह है। इससे मुझे सही समय पर तुम्हारी कृपा का उपहार मिलता है।

तुमने मेरे शब्दों को नजरअंदाज करते हुए कहा, ''लेकिन तुम ऊब क्यों अनुभव कर रहे थे?''

मैंने कन्धे उचकाकर कहा ''पता नहीं।''

''तुम पता करने का प्रयास क्यों नहीं करते?'' बात आगे बढ़ाते हुए तुम बोले। विचारों के मंथन से मैंने सोचा ''शायद मनुष्य को ऊब तब होती है जब वह ज्यादा सुखों से तृप्त हो चुका हो या यह ऊब का अनुभव तब मन में प्रवेश करता है जब कोई तुम्हारे द्वारा उपहार स्वरूप दिए गए जीवन की बहुमूल्यता को भुलाने लगता है।'' मेरे बहुत सोच-समझ कर दिए गए उत्तर में बौि(कता थी जिससे मैं प्रसन्न हो गया था। आत्मसंतुष्टि का अनुभव करते हुए मैं गर्वित हो उठा।

लेकिन तभी, जैसे मेरे गर्व के बुलबुले को सुंई से छेद दिया गया हो, तुमने मेरे शब्दों को अनसुना करते हुए कहा। ''ऊब एक आलस्य भरा खालीपन है। यह उन मनों द्वारा अनुभव किया जाता है जो स्वकेन्द्रित हो गए है। जिन्हें यह होश नहीं है कि जीवन एक निरन्तर नएपन की प्रक्रिया है और यह प्रचुर सम्पदा का भंडार है। जब तुम्हें अपने हृदय में मेरी उपस्थिति के अनुभव का आनन्द नहीं हो पाता और जब तुम अपनी निजी स्वतंत्रता के कष्टदायक पिजड़ें में कैद हो जाते हो, तो ऊब अनुभव करते हो।''

मैं तुरंत समझ गया कि तुम्हारे सामने आत्मप्रदर्शन या बनावट का प्रयोग

बेकार है। सच कहूँ, न तो मुझे यह समझ आया कि मेरे बड़बोले उत्तर को तुमने अनसुना क्यों किया और न मैं तुम्हारे प्रत्युत्तर का अर्थ ही समझ पाया। इसलिए मैंने अधिक नम्रता से कहा ''क्या तुम्हारे कहने का अर्थ है, तुम्हारी असीम देन को भुला देना ही ऊब को आमत्रंण देना है।''

तुम मेरी सोच के बदलने से खुश दिखे, ''हाँ एक कारण यह भी है। यह सत्य है कि सब 'कुछ' सुनहरा है क्योकि सब कुछ 'मेरा' है। तुम यह नहीं जानते क्योकि दूसरों से व्यवहार करते समय तुम अचेतन रूप से ''मेरे-तेरे'' के बीच सीमा खींच लेते हो। उबासी से बचने के लिए तुम्हें केवल मेरी सतत् उपस्थिति, जो तुम्हारे आस-पास सदैव होती है, उसको अनुभव करने का प्रयास करना है''।

''यह आसान नहीं है।''

''सच है। लेकिन अगर अपनी क्रिया-प्रतिक्रिया में बदलाव ला सको, तो वातावरण या अन्य व्यक्तियों से सम्पर्क बनाने में कम घर्षण होगा''।

''लेकिन यह परिवर्तन कैसे करूँ?'' मैंन तर्क किया।

तुमने मुझे कनखियों से सप्रेम देखा, ''यह आसान है। खाओ परन्तु स्वाद मत लोऋ छुओ लेकिन उठाओ ;लादोद्ध मतऋ देखो मगर ....''

''बहुत हुआ'' मैं चीखा, ''कृपया क्षमा करें, जब आप मुझसे वार्तालाप करें तो अपने परात्पर-आवास के स्तर से न करें।''

इस पर तुमने मुझ पर ऐसी दृष्टि डाली कि मुझे तुम्हारे प्रेम और उपहास का एक साथ अनुभव हुआ।

तुमने उत्तर दिया ''परात्पर में निवास के बिना कोई चारा नहींऋ अनन्तता मेरा सच्चा आवास है, लेकिन प्रेम मुझे नीचे ले आता है और इसी कारण मैं सब में व्याप्त हूँ।''

कुछ क्षण रूककर तुमने फिर से कहना शुरू किया ''आशा करता हूँ कि अब मैं जो कहता हूँ, उसका पालन करोगे- सावधान रहो कि इन्द्रिय सुख के क्षण में भी तुम मुझे स्मरण करना न भूलो और उन सुखों के तुम गुलाम न बनो। पीड़ा या कष्ट के क्षण में भी तुम इतना न डूब जाओ कि अपने हृदय में, अपनी पीड़ा में मेरा सहयोग मांगते समय मेरी उपस्थिति को न भुला सको।''

''मैं कोशिश करूँगा लेकिन जरूरी नहीं कि सफल होऊँ।'' मैंने तुम्हें हताश

भाव से देखा और तुमने मुझे आश्वस्त किया, ''जानता हूँ, मैं जानता हूँ .... लेकिन मेरे ऊपर अधिकाधिक निर्भर रहने के चमत्कार की प्रतीक्षा करो। तुम्हारी और सभी की सहायता करके मुझे खुशी होती है क्योकि मैं जीवन का स्रोत, लक्ष्य और प्रवाह हूँ। मुझ तक पहुँचने की गहरी इच्छा असंभव को भी संभव बना देगी। दुनिया से भागो मत, वीर बनो। मैं यह नहीं कहता कि इन्द्रिय सुखों को छोड़ दो लेकिन उनके दास बत बनो।''

''लेकिन मुझे जीवन भ्रम पैदा करने वाला, तेज गति का ऐसा बहाव लगता है जिसमें सुख और दुख एक के बाद एक गतिशीलता से आते-जाते रहते हैं। इससे मेरा हृदय और मन दोनों प्रभावित हो उठते हैं जिससे तुम्हारा स्मरण लगातार करते रह पाना कठिन लगता है।''

''यही समस्या हर एक के साथ है। तुम अकेले नहीं हो। तुम्हें भी जीवन के इन पक्षों का अवश्य सामना करना है। तुम्हें जीवन को, यह जैसा भी है, स्वीकार करना होगा। साथ ही तुम्हें उस सीमा-रेखा को भी जानना होगा जिसका तुम्हें उल्लघंन नहीं करना है।''

''सचमुच यह बड़ा मुश्किल है। आसक्ति प्रायः मुझे जीत लेती है। जैसे ही मैं सीमा-रेखा का उल्लघंन करने वाला होऊँ क्या तुम सीटी नहीं बजा सकते?''

तुम मुस्कराए, ''सीटी! मैं तो शंखनाद करता हूँ पर तुम बहरे हो जाते हो।''

''क्यों बहरा हो जाता हूँ?''

तुमने मुझे घूरते हुए देख कर कहा ''क्योंकि अपने इन्द्रिय सुखों में इतने बंध ो और डूबे रहते हो कि तुम उनमें पूरी तरह खो जाते हो। अपने अन्तर में सदा मेरी उपस्थिति के प्रत्युत्तर के लिए तत्परता से जागो। ''

मेरे सामने कई समस्याएं उठ खड़ी हुई। कई आसक्तियां मेरे पास चक्कर काटने लगीं। मैं अभी तक अपनी शंकाओं से बाहर न आ सका था। जो कुछ तुमने कहा वह उन चुनौतियों से कहीं ज्यादा मुश्किल था जिनका सामना करने के लिए मैं खुद को तैयार कर सका था। मुझे लगा तुम अपनी परात्पर स्थिति के अपने आवास से बाहर खड़े थे, लेकिन बस एक कदम।

अभी तक गर्मी थी और मैं प्यासा था इसलिए मैंने कहा मैं एक गिलास

पानी लूँगा और एक तुम्हारे लिए भी लाऊँगा। ''

और मैं उठ खड़ा हुआ, खिड़की की चौखट के पास रखे जग की तरफ तुम्हारी ओर से पीठ करके मुड़ा। अपनी प्यास बुझाई और तुम्हारे लिए गिलास भरा। लेकिन मैं जब पीछे घूमकर गिलास तुम्हें देने को हुआ तो पाया कुर्सी खाली थी।

मैं तुम्हारे अचानक अर्न्तध्यान हो जाने से आश्चर्य से काँप रहा था। एक छोटी सी 'कामना' भी तुम्हारी धन्य उपस्थिति से वंचित कर सकती है और मैंने अनुभव किया कि तुम्हें पानी पिलाने के प्रस्ताव में भी अपनी प्यास बुझाने की लालसा ही थी। मुझे याद आया कि जैसे ही मैं तुम्हारी ओर पीठ फेर रहा था तो तुम्हारे मुखमण्डल पर एक कोमल सौम्यता दिखाई दे रही थी। तुमने नेत्र बंद कर लिए थे और कोमलता से मुस्कुरा रहे थे। तुमने मुझ अपनी स्वीकृति दी थी और उस स्वीकृति में गहरा अर्थ छिपा था।

अब मैं खाली कुर्सी को घूरता, अपने अपराध को स्वीकारता खड़ा था। तुम्हारी उपस्थिति की सुगंध ने कमरे को तुम्हारी मुस्कानों से भर दिया था और मेरी ऊबासी के बचे-कुचे अंश नष्ट हो चुके थे। तुम्हारी उपस्थिति ने मेरा हृदय छू लिया था। जिससे आँखों में आँसू भर आए थे। तुमने मेरे ऊपर कितनी दया की, कैसा बिना शर्त क्षमादान। एक आवाज मेरे हृदय से आई -

तुम्हारी सदाबहार मुस्कान
की अनुभूति होते ही तत्क्षण,
ऊबासी स्वेच्छा से भाग जाती है
मीलों दूर,
उस क्षण
जिस क्षण मैं अनुभव करता हूँ
तुम्हारी सदाबहार मुस्कान!
मेरी ऊबासी अपने आप
मीलों दूर परे सरक जाती है।

ईश्वर-इच्छा

''क्या यह सच है कि बिना ईश्वर-इच्छा के पत्ता भी नहीं हिलता''? मैंने उत्साहपूर्वक तुमसे पूछा। यह प्रश्न मेरे मन मे वर्षों से कुलबुला रहा था।

मैंने तुम्हारी इच्छा को ईश्वर की इच्छा से जोड़ रखा था लेकिन तुमने कभी इस पर कुछ नहीं कहा। तुमने शांत उत्तर दिया ''हाँ, यह सच है, लेकिन यह भी स्थितियों पर निर्भर है ....''

''किन स्थितियों पर?'' मैंने व्याकुलता से पूछा! ''इससे तुम्हारे कथन के पहले भाग से दूसरे भाग का विरोधाभास नहीं है?'' संतुलित भाव से तुमने उत्तर दिया ''प्रकट रूप से 'हाँ'। किसी के लिए यह कहना स्वाभाविक है। लेकिन वास्तव में कोई विरोधाभास नहीं। ''

इस उत्तर ने मुझे चकरा दिया, ''क्या अपने उत्तर को तर्क देकर समझाओगे''? मैंने संदेह किया।

''इसका अपना तर्क है। इस तर्क से अलग-अलग स्तरों पर अलग रूप हैं। यह तुम्हारे सामने दो चीजें रखती है - पहला ''तुम्हारा ईश्वर कितना बड़ा है? और यह कि ''अपने ईश्वर'' को तुम कितना सूक्ष्म समझते हो?''

क्या 'ईश्वर' मेरी उसके प्रति परिकल्पनाओं पर आधारित है? मैंने प्रतिप्रश्न जड़ दिया।

''नहीं। ईश्वर पूर्णतया स्वतंत्र है। जबकि सब कुछ उस पर निर्भर है फिर भी वह किसी पर निर्भर नहीं है। फिर भी प्रश्नों के उत्तर, प्रश्न करने वाले साधक की निष्ठा पर निर्भर है। ''

''लेकिन क्यो? कैसे?''

तुम्हारी धीर-गंभीर वाणी जीवन्तता से उच्चारित हो उठी, ''शब्द केवल उत्तर की ओर संकेत दे सकते हैं, शब्द स्वयं में उत्तर नहीं वहन करते फिर भी शब्द वाहक-माध्यम बन सकते हैं जिनसे सत्य का अर्थ तुम तक पहुँचे और तुम्हारे अस्तित्व को अनुप्राणित कर सकें''।

''इस तरह किसी गूढ़ प्रश्न का उत्तर, जो शब्दों में व्यक्त किया गया हो

साधक की संवदेनशीलता और समझ के आधार पर आमूल परिवर्तनशील होता है। कभी-कभी शाब्दिक उत्तर के बाद की शांति और मौन के द्वारा सच्चा उत्तर परिलक्षित हो सकता है।''

मैंने उत्तर नहीं दिया और तुम बोलते गए ''यदि कोई व्यक्ति अपनी श्वास-प्रश्वास के रूप में और धमनियों में प्रवाहित रक्त की तरह ईश्वर को सचमुच अनुभव करता है तो वह निश्चित रूप से अनुभव करेगा कि ''ईश्वर की इच्छा के बिना पत्ता भी नहीं हिलता'' और यह भी कि कुछ अचानक या संयोग से नहीं होता। जब तक काई अपने अन्तर में ईश्वर की उपस्थिति का गहरा अनुभव नहीं करता तब तक वह बाहरी-जगत और प्रकृति में ऐसे अनुभव की आशा कैसे कर सकता है?''

''निष्क्रिय प्रश्न का सूखा, मौखिक उत्तर मिलता है जो जीवन्त नहीं होता। ऐसे उत्तर के पुष्पित, पल्लवित और प्रतिफलित होने की आशा क्या की जा सकती है?''

मैं प्यासा सा तुम्हारी शब्द सुधा को पीता रहा और अनुभव करता रहा कि मेरा प्रश्न कितना व्यर्थ था। तुम्हारी विशालता की अनुभूति से मैं कुछ देर के लिए ठिठक कर खड़ा रह गया। स्नेह से तुम्हें घूरता, मौन रहा। शायद मेरे मौन ने तुम्हें प्रसन्न कर दिया।

तुम्हारी आँखों में चमक आ गई और उनमें वही अंतरंगता तैर गई। ''अपने प्रश्न को एक दूसरे दृष्टिकोण से देखो। सृष्टि में जिस किसी क्षण, तुम जो भी अनुभव करते हो या देखते हो वह मेरी अनन्त लीला का अंश मात्र है।''

यह सुनकर मैं विचलित होकर बोल उठा ''इस 'अनन्त' शब्द का प्रयोग मुझमें आदर मिश्रित भय पैदा करता है। यह, मेरे विवेक को तर्क के आधार पर चेतावनी देता सा लगता है। फिर भी यह अनन्त का भाव मेरे ह्रदय को आहल्लादित भी करता है क्योकि इससे ह्रदय के आकाश में विराटता के महत्व का मार्ग खुल जाता है, जिसके साम्राज्य में भावनाएं ऊँची कुलाँचे भर सकती है।''

''सचमुच!'' तुमने मधुरता से कहा।

तुम्हारे मुख पर आश्चर्य के भाव थे। मैं उसी मुख, जिस पर कुछ पल पहले ही गंभीरता के भाव थे, पर बाल-सुलभ भाव देखकर अंचभित रह गया।

अकारण ही, मैंने खिड़की से बाहर एक बड़े ऊँचे नीम के पेड़ के ऊपरी हिस्से पर नजर डाली। बसन्त)तु थी और पेड़ की हरी पत्तियां हवा के झोंकों पर नृत्य कर रही थीं। उनके नृत्य ने मुझे अपने प्रश्न ''ईश्वर की इच्छा के बिना पत्ता भी नहीं हिलता'' की याद दिला दी।

और लगा जैसे वे तुम्हारे गौरव-गीत गा रही हो। -

''हममे से प्रत्येक आंदोलित ;क्रियाशीलद्ध है,

केवल ईश्वर की इच्छा से।''

मैंने सोचा, यह तुम्हें भी सुनाँऊ। लेकिन जैसे ही मैं मुड़ा, खिड़की से एक ठंडी हवा का झोंका आया और उसी के साथ तुम जा चुके थे।

अपने ह्वदय की गहराईयों से मैंने अनुभव किया कि तुमने मेरे प्रश्न का उत्तर दे दिया है। लेकिन अपनी पिछली समझ के कारण अभी भी मैं बोध से बहुत दूर हूँ।

मैंने, जो तुम्हारे शब्दों से अब भी प्रवाहित हो रहा है, वही मेरी एकमात्र आशा है। लेकिन यह भी तो ईश्वर-इच्छा पर निर्भर हैऋ बल्कि यूँ कहें, उदार प्रेम से पगी, तुम्हारी इच्छा पर।

तुम्हारा अनुसरण, सदा प्रवाहित होना है

शाम के समय में मैंने अपने आप को तुम्हारे साथ, पहाड़ी की दीवार से निकले एक पत्थर की ओट में, बैठा पाया। हमारे सामने कुछ काँटेदार और बौने पेडों को छोड़कर, नंगे वृक्षों और वनस्पति से ढका एक बडा भू-भाग था। लेकिन मेरी बगल में तुम थे, तो शुष्क पठारी-धरातल भी मेरे लिए सुन्दर-दृश्य था।

दूर क्षितिज पर अस्त होता सूर्य मटमैली झील पर झिलमिला रहा था। मैंने खेत के पास एक झोपडियों का समूह देखा। वहीं एक सड़क थी जिसके दोनों ओर ऊँचें वृक्ष थे और जो पहाड़ की तलहटी से गुजरते एक कच्चे मार्ग से मिलती थी। तुम दूसरी दिशा में देख रहे थे और में अलग दिशा की ओर। तुम्हारी मौन उपस्थिति भी उतनी ही रोमांचकारी थी, जितना तुमसे बौि(क वार्तालाप। मैं आज तक नहीं जान पाया कि तुम्हारा मौन तुम्हारें शब्दों से अच्छा है या इसका उल्टा!

मैं नहीं जानता था कि तुम मुझे कुछ बताना चाहते हो या मुझझे कुछ सुनना। थोड़ी देर बाद जब मेरा मन तुम्हारे मौन को सहन न कर सका तो मैंने धीरे से बोलने का जोखिम उठाया, ''जानते हो पिछले हफ्ते मैंने कैसा बेवकूफी भरा काम किया?''

तुमने जानना चाहा, ''क्या?''

तुम्हारी स्नेहपूर्ण भाव भंगिमा ने मेरे ह्वदय को प्रफुल्लित कर दिया। मैं तुमसे सीधे-सीधे कहने लगा, ''पिछले हफ्ते उस सड़क पर, जिसके दोनों ओर वृक्ष खडे हैं, टहल रहा था। मैंने उंगली से उस ओर इशारा किया। ''धूप सुहावनी, हवा सुहावनी और स्फूर्तिदायक थी। जब हवा ने मेरे गालों को छुआ तो इसके स्पर्श ने मुझे तुम्हारे स्पर्श की याद दिला दी।''

तुमने प्रश्नवाचक दृष्टि से मुझे देखा, ''इसमें बेवकूफी भरा क्या?''

''सुनों तो सही'' मैं मुस्कुराती आँखों से कहता गया, ''उस समय मैंने तुम्हारा स्मरण किया। मुझे तुम्हारी बहुत याद आई और मैंने सड़क के किनारे से एक जंगली फूल तोड़ाऋ अपने सिर के ऊपर फूल को गोल-गोल घुमाकर और फुसफुसाकर यह कहते हुए कि ''यह तुम्हें अर्पित है'' उसे हवा में ऊपर उछाल दिया।''

''ऐसा किया?'' तुमने पूछा।

''हाँ और ठीक उसी समय चुपचाप बिना किसी पूर्व चेतावनी के मेरे पीछे एक चक्रवात आया और कुछ देर मेरे सामने स्थिर उर्ध्ववत ;सीधा खड़ाद्ध घूमता हुआ खड़ा रहा फिर आस-पास की धूल के साथ उसने फूल को भी अपने अन्दर समेट लिया और आगे निकल गया। फिर से ठंडी हवा चलने लगी।''

''लेकिन जानते हो फिर क्या हुआ?'' तुमने पूछा।

''नहीं! क्या?'' मैंने उत्सुकता से जानना चाहा।

''मैंने फूल ले लिया। मैंने इसे पा लिया।''

''सचमुच?'' मैंने आश्चर्यचकित हो कहा।

''तुम देखना चाहोगे? मैं तुम्हें दिखाऊँगा'' और यह कहते हुए तुमने फूल मुझे दे दिया। मैं चौंधियाया सा फूल का निरीक्षण करने लगा, फिर आश्चर्य से चीखा, ''हाँ, ऐसा ही फूल था।''

''ऐसा ही नहीं'' तुमने मेरे कथन को ठीक किया, ''यही फूल था।'' ''लेकिन यह इतना ताजा क्यों है?'' मैंने संदेह करते हुए कहा।

''जो मुझे मेरे प्यार में अर्पित किया जाता है, वह मेरे प्रेम से प्राप्त और प्रेम के द्वारा ही धारण किया जाता है। इस पर काल ;समयद्ध का प्रभाव नहीं पड़ता। इसलिए फूल मुरझाया नहीं।''

मैं भौंचक्का रह गया तथा केवल कह सका, ''अविश्वसनीय मेरी समझ की सीमा से बहुत दूर। तुम्हारा स्मरण करते हुए, फेंक कर फूल अर्पित करना, सामान्य सी और अचानक चलते-फिरते की गई क्रिया थी।''

इस पर तुम्हारी आँखें चमक उठी, ''वही असली कारण है जो यह मुझ तक आ सका। इसके अर्पण में आशा-इच्छा का कोई बंधन न था, जिससे यह मुझ तक पहुँचने से रोका जा सके। यह सीधा मेरे पास आया ऐसे ही गिने-चुने अवसरों पर यें समपर्णकर्ता अन्जाने ही मुझ तक पहुँच कर मेरा हृदय छू लेते हैं।''

''ऐसे अवसरों को जीवन में, बिना तुम्हारे, मैं कैसे आमंत्रित कर सकता हूँ?''

''नहीं कर सकते।'' तुमने मुझे करूणा से दखा और कहते गए, अपने सर्वोत्तम और कठिन प्रयास से तुम अधिक से अधिक मेरी उपस्थिति-संज्ञान के बाहरी छोर के निकट तक ही पहुँच सकते हो। यह निकटता भी व्यक्ति को आश्चर्यजनक

उपलब्धियां प्रदान करती है। लेकिन वे उस व्यक्ति ;ग्रहणकर्ताद्ध को अकसर जरूरत से ज्यादा मूल्यवान उपलब्धि समझ बैठने का प्रलोभन भी देती है। सबसे अच्छा है, मुझसे सीधा, स्वतंत्र सम्बन्ध बनाओ। तथाकथित ''आध्यात्मिक'' अनुभवों या अवसरों का सहारा मत लो। ''

''तो मुझे वास्तव में क्या करना चाहिए?''

''मेरे प्रति अपनी आस्था और प्रेम को ऐसी वस्तुओं और घटनाओं से अप्रभावित रहने दो।''

''लेकिन अपनी वर्तमान प्रवृत्तियों से मुक्ति कैसे मिले?'' तुम दूसरी तरफ देखने लगे, जैसे मेरे प्रश्न का सीधा उत्तर मेरे लिए ठीक न होगा। कुछ रूककर तुम बोले ''अनुभवों के विशाल भण्डार, जिन्होने तुम्हारे जीवन को ढक रखा है, उन्हें तुमको हटाना होगा। इस अनमोल यात्रा पर निकलने से पहले, अपना हृदय और मन मेरे सामने ईमानदारी से खोल दो। तुमने हाथों से इशारा करते हुए बताया ''मेरा अनुसरण करते रहना, बहते ही जाना है, बाढ़ के समय उफनती नदी की प्रथम लहर की तरह। वही लहर लगातार नए अभियान के लिए आगे बढ़ती जाएगी। इस तरह के प्रवाह में 'मैं' का तत्व बिल्कुल नहीं होता और इसका कोई निश्चित रास्ता भी नहीं होता। यह मेरे लिए तुम्हारी पुकार के प्रत्युत्तर में तुम्हारे हृदय की सक्रिय गतिशीलता बन जाती है।''

तुम्हारे शब्दों से सम्मोहित, फिर भी तुम्हारे कहने का अर्थ समझने की कोशिश करते, मैं भौचक्का सा दिख रहा होऊँगा। तुमने मुझे देखा और गहरी दृष्टि जमाते हुए कहा ''हम इस विषय को अब बंद क्यो न कर दें? तुमने शालीनता से परे देखते हुए कहा, ''अच्छा होगा अब तुम घर जाओ, नहीं तो भोजन में देर हो जाएगी।''

'मज़ाक' और 'गहराई' दोनों एक साथ। अज्ञाकारी छात्र की तरह मैं उठा और पहाड़ी से नीचे उतरने लगा। परन्तु पीछे मुड़कर देखने की इच्छा को मैं रोक न सका।

तुम्हारे चेहरे पर मोहक आभा प्रकट हो रही थी। मना करते हुए तुमने संकेत दिया ''पीछे मुड़कर मत देखो। चलते रहो, प्रवाहित रहो।''

इस भेंट ने मुझे तुम्हारे कितने निकट, फिर भी कितना दूर कर दिया।

प्राकृतिक ;नेचुरलद्ध, फिर भी आश्चर्यजनक। कल्पना से परे मैंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि सहजता से हवा में तुम्हारी ओर एक फूल, मात्र उछाल देने से तुम मुझे अपने तक सदा प्रवाहमान रहने का संदेश दोगे।

नववर्ष उपहारः असली अँगूठी

यह नववर्ष की पूर्व संध्या का उत्तरार्ध था। मैं एक चटाई पर बैठा .... लड़की के चमचमाते पुराने बक्से की चीजें उलट-पलट रहा था। यह बक्सा मेरे परिवार में बहुत वर्षो से था और इसमें रखी चीजें उससे भी कहीं अधिक पुरानी थी। यह मुझे उत्तराधिकार में मिली अमूल्य वस्तुएं थीं।

अतः उस क्षण में उन वस्तुओं जिनमें पुराने स्कार्फ, रूमाल और बटुए थे, उन्हें पूज्य भाव से सहेजने की भावना में मग्न था। क्योंकि मेरा मन अपने माता-पिता, पूर्वजों, पुरखों के विचारों में ही डूबा था और एक वस्तु-विशेष, जो मेरे लिए बहुमूल्य भी थी, मैंने उसे गायब पाया।

मैं उन्हें तहा रहा था, फैला रहा था, बाँधता था, खोलता थाऋ खोलते बंद करते हताशा से उस चीज को ढूँढ रहा था पर ढूँढ नहीं पा रहा था।

''इतने मनोयोग से क्या ढूँढ रहे हो?'' मैंने पीछे से एक आवाज सुनी।

मैं जान गया यह तुम थे, लेकिन थोड़ा गुस्से के कारण बिना सिर घुमाए मैंने कहा, ''एक मिनट के लिए क्षमा करोऋ कृपया बैठो।'' तत्काल मैं लज्जित हुआ। मेंने तुम्हें देखा और तुम मेरे असभ्य जवाब और मूर्खता की पहवाह किए बिना सरल भाव से मुस्कुरा रहे थे। हाथों में थामे 'अमूल्य धरोहर' की वस्तुओं का ढेर मैंने बक्से में रख दिया। दो थैलियों के अलावा बची-कुची चीजें भी उसी में डाल दी। दोनों थैलियों में से एक को अपनी कमीज की जेब में ठूंसा, बाक्स का ढक्कन बंद किया और दूसरी थैली मैंने तुम्हें दिखाई। यह बहुत पुराना रेशमी पाउच था जिस पर की गई कढ़ाई इसका विरासती परपंरागत मूल्य था। तुम्हारे नेत्र इसे देख चमक उठे और तुमने इसकी प्रशंसा की।

''इस पर गुलाबी रंग का गुलाब मैंने स्वयं अपने हाथों से पिछले वर्ष काढ़ा है।'' कुछ-कुछ अंहकार से मैंने तुम्हें कहा। दुर्भाग्य से जिस वस्तु को रखने के लिए मैंने थैली बनाई और काढ़ कर सजाई थी, वह वस्तु गायब है। मैंने उसे बहुत ढूँढा पर नहीं मिली। वही घंटो से ढूँढ रहा हूँ।''

''पर वह है क्या''? तुमने पूछा।

''एक अँगूठी'' मैंने उदास सा उत्तर दिया।

''मूल्यवान अँगूठी?''

''मूल्यवान। अरे अपने आप में अपनी तरह का अनोखा-यह मेरा मूल्यवान, पारिवारिक धरोहर था। यह सात धातुओं का बना था। उस पर उगते सूर्य के आकार में रत्न जड़े थे। बहुत ही सुन्दर और भाग्यशाली भी था।''

''लेकिन आज जब वर्ष का अंत नजदीक है तो उसे खोजने में क्यों लगे हो?''

मैंने स्पष्टीकरण दिया, ''क्योंकि मेरी यह आदत रही है कि प्रत्येक नववर्ष के प्रारंभ मे मैं इसे हाथ में पहने रहता हूँ। ऐसा करके मैं पिछले वर्ष की थकान मिटाने और आने वाले वर्ष के लिए शक्ति और प्रसन्नता संचित करने की कल्पना करता हूँ। मेरे लिए यह बहुत महत्वपूर्ण प्रतीक है और अब जब मैं इसे खो चुका हूँ तो लगता है कि जैसे मेरे सारे सपने मर गए हों।''

तुमने मेरी उदासी देखकर खोजपूर्ण दृष्टि डाली। फिर शांत भाव से पूछा, ''अँगूठी प्रतीक की हानि - यह तुम्हारी चिंता का कारण है या उसमें तुम्हारी उसमें आसक्ति तुम्हारी चिंता का विषय है?'' प्रश्न ने मुझे अचकचा दिया। मैंने कहा ''माफ करना शायद मैं तुम्हारी बात समझा नहीं। उगते सूर्य के 'प्रतीक-चिन्ह' होने मे कोई गलती है क्या?''

''प्रतीक बुरा नहीं परन्तु तुम्हारी उसके ऊपर निर्भरता और उसमें आसक्ति, अच्छी बात नहीं है। जब तुम किसी प्रतीक का एक निश्चित अर्थ मानकर और उसकी व्यक्तिगत व्याख्या करके स्वयं को अपनी कल्पना में बंद कर लेते हो, तो प्रतीक चिन्ह का महत्व खत्म हो जाता है।''

''शायद प्रतीक-विज्ञान का प्रयोग ही सही ना हो।'' मैंने जानना चाहा। '' मैं किसी वस्तु को व्यर्थ नहीं बताता, क्योकि मैं तो सब कुछ हूँ। लेकिन मैं चाहता हूँ कि तुम अपने जीवन मे प्रतीकों का उचित स्थान समझ लो तो इससे उन्हें ज्यादा या कम महत्व देने से बचोगे।'' मैंने पूछा, ''तुम कह रहे हो कि मेरा प्रतीकों के प्रति सही दृष्टिकोण नहीं है?'' लेकिन यह मैं कैसे जानू?''

''इनसे ;प्रतीकद्ध शासित न होकर अँगूठी, तुम्हारे-धरोहर के खोने पर तुम्हें इतना विचलित नहीं होना चाहिए। जो प्रतीक चिन्ह देता है वही उसको वापस लेने

का सही समय भी जानता है। प्रतीकों के प्रति तुम्हारा सही दृष्टिकोण यह होना चाहिए कि वे तुम्हें कोई सत्य, जो उनसे भी परे है, की तरफ इशारा करते है। इसलिए जीवन को प्रतीकों से भरने या उनसे चिपके रहने की कोशिश मत करो, लेकिन जब वे तुम्हें मिलें तो बिना आसक्त हुए उनका सम्मान करो।''

''क्या प्रतीकों की कोई ऐसी श्रेणी ;**Catagoary**द्ध भी है जो विशेषतया महत्वपूर्ण हो?'' मैंने पूछा।

''अनगिनत, लेकिन तुम्हें उनमें अंतर करने की समझ होनी चाहिए। तब तक एक समय ऐसा भी आ सकता है जब प्रत्येक पत्थर का टुकड़ा तुम्हारे लिए रत्न हो सकता है और इसका आकार और रंग अकथनीय संदेश दे सकते है।''

यह सब मेरी समझ के लिए बहुत भारी था और ऐसा भाव मेरे चेहरे पर भी आया होगा क्योकि तुम समझाने के भाव से मुस्कुराए।

''मेरे कहने का अर्थ है'' तुम कहते गए ''कि 'आदर्शभाव' जो बहुत से हैं उनसे तुम बंध न जाओ। 'आदर्श भाव' प्रतीकों के सच्चे-संकेतों को अस्पष्ट कर सकते हैं।'' अब भी मेरे पल्ले कुछ नहीं पड़ा। ''तुम्हारे कथन अकसर जैसे बहुत गहरे पानी में मुझे छोड़ जाते है।'' मैंने कुछ न समझ पाने की हताशा से सिर हिलाया।

तुमने मजा लेते हुए कहा ''लेकिन अगर तुम्हें तैरना आता है तो तुम जितनी सरलता से, गहरे गौते लगा सकते हो, उतनी ही सरलता से सुरक्षित सतह तक भी आ सकते हो। इसके महत्व को अपने जीवन के एक अंश के रूप में उपयोग भी कर सकते हो।''

''शायद मैं गोता लगाने के प्रयास में कमर कसना अभी प्रारंभ ही कर रहा हूँ, लेकिन क्या यह बता सकते हो कि सब प्रतीकों में क्या कोई विशेष प्रतीक है जो सर्वश्रेष्ठ है''?

तुमने तत्काल उत्तर दिया ''हाँ है और तुम्हारे पास यह पहले से ही है।''

मैं चकित हुआ ''मेरे पास मजाक कर रहे हो?''

''नहीं मजाक नहीं। सर्वोत्तम प्रतीक है वही अँगूठी। ''

''अँगूठी? कैसी अँगूठी?''

''तुम सदा बाहारी रूप को ही देखते हो इसलिए तुम्हें इसका ज्ञान नहीं है,

जब कि वह अँगूठी तुम्हारे अन्तर में है, बल्कि सबके अन्तर मे है। जन्म के समय मैं अपनी श्वाँस से अपनी चेतना तुम्हारे अस्तित्व में फूँक देता हूँ और साँस चलने लगती है। मेरी चेतना तुम्हारे अस्तित्व में समा जाती है। यहर श्वाँस-प्रश्वास जो बाहर-भीतर अनजाने मुद्रिकावत गोल, अंगूठी सी, जीवन भर चलती है, उसे धारण करती है, यही अद्वितीय प्रतीक है। यदि यह गोलाकर आती और जाती श्वाँस मेरा स्मरण करती है तो वही वास्तविक अंगूठी हो जाती है जिसे वास्तव में तुम्हें खोजना चाहिए इसी प्रतीक की ओर सभी प्रतीक, सभी चिन्ह संकेत करते है। ''

तुम्हारी सुन्दर ज्योर्तिमयी दृष्टि मेरे ऊपर वरदायक मुद्रा में पड़ी। तुम्हारी उपस्थिति में खोया मैं चुपचाप, सुन्न सा बैठा रहा। तुमने मेरी जड़वत् मनःस्थिति को सहजता से कहते हुए तोड़ा, ''हाँ यह तो बताओ तुम्हारी कमीज के पॉकेट से लटकता वह हरा धागा क्या है?''

मैंने नीचे देखाऋ रंगीन ऊनी धागे में लगे फुंदने लटक रहे थे। ''एक खाली पाउच है।'' फिर से निराशा ने घेर लिया। ''जब में चीजें समेट रहा था तो इस अपनी जेब में ठूँस लिया होगा'' कहते हुए मैंने पाउच जेब से बाहर निकाला और मुझे लगा जैसे इसमे कोई ठोस चीज हो, खोलकर देखाः

''हे भगवान! मेरे भगवान! मिल गया। ये तो यहां है''। मैं चीखा।

''क्या''? तुमने पूछा।

''अंगूठी जिसकी खोज मे मैं परेशान था।''

मेरा मन कुलाँचे भरने लगा। अचानक हो मुझे याद आया कि पिछले साल जब बटुए पर गुलाबी रंग का गुलाब काढ़ने चला था तब पहले उसमें रखी अंगूठी निकाल कर इस सादे बटुए में रख दी थी और बिल्कुल भूल गया था।

''क्या अब तुम प्रसन्न हो?'' तुमने पूछा।

''प्रसन्न? अरे मैं तो खुशी से पागल हूँ।''

और तुमने सरलता से ऐसी बात कही जिसने मुझे तब से स्तब्ध कर रखा है।

''सच्ची खोज का अन्त यह जानना है कि कोई वस्तु कभी खोती ही नहीं।''

अब तक इस कथन की गहराई नहीं समझी है। तुम मुस्कुराए और कहा ''यदि तुम खुश हो तो मैं अब चलूँ?''

तत्काल मेरी आँखों में आँसुओं की धुंध छा गई। ''तुम मुझसे यह कैसे पूछ सकते हो? भला मैं कब चाहूँगा कि तुम जाओ? लेकिन .... हाँ, नमस्कार। लेकिन बहुत देर तक दूर न रहना और कृपया मुझसे अभिवादन में हुई मूर्खता को क्षमा करना।''

अब मेरे आँसुओं में खुशी और कृतज्ञता की नमी आ गई। मुझे आज बताया कि तुमने मुझे मेरे जन्म पर ही 'असली अंगूठी' दी थी। तुम्हारी इस माया में रहते हुए भी मेरा जीवन इस असली अंगूठी के प्रति सजग रहे, ऐसी कृपा करना।

तुमने आश्वासन पूर्ण मुस्कान के साथ मेरे अन्दर परम निश्चितंता के भाव का प्रसारण कर दिया। मुझ लगा कि अन्दर जाती सांस और बाहर निकलती सांस के गोलाकार अंगूठी जैसे चक्र ने मेरे अन्तर को घेर रखा है। ठीक उसी समय घंटा घर के घडियाल ने नए वर्ष की उद्घोषणा कर दी।

नव वर्ष का कैसा अनुपम उपहार था।
तुम्हारी कृपा से मैं इसके योग्य बनूँ।
घंटे जोर-जोर से बज रहे थे।
नव वर्ष के आह्वान के लिए।
मेरा ह्रदय धीरे-धीरे गा रहा था।
कितनी निश्चित लय की धुन।

मेरा अध्ययन करो

यह एक सुबह थी, मेरे टहलने का रोजाना का समयऋ परन्तु मेरी नाक के नीचे मेज पर एक मोटी पुस्तक खुली थी और मैं पढ़ रहा था। पुस्तक का विषय रूचिपूर्ण था। उसकी बातें पूरी या कुछ-कुछ मेरी समझ में न आते हुए भी मैं उत्साह और तल्लीनता से पृष्ठ पर पृष्ठ पलटता जा रहा था।

एकदम अलग विषय की एक दूसरी मोटी किताब मेरी मेज के दूसरे कोने पर पड़ी थी। पिछली रात देर तक मैं इसे पढ़ता रहा था।

अचानक मेज पर ठक-ठक की आवाज से मेरा ध्यान भंग हुआ। भौंचक्का सा मैंने देखा कि मेरे सामने तुम बैठे हो। मन खुशी के मारे बल्लियों उछल पड़ा।

''तुम्हें इतने एकाग्र होकर पढ़ते देख आश्चर्य हो रहा है।'' तुमने कौतुहल से पूछा।

''मुझे भी स्वयं आश्चर्य हो रहा है।'' मैंने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया।

''किस विषय के बारे में पढ़ रहो हो?'' तुमने पूछा।

''पहले मुझे स्पष्ट करने दो।'' अपनी समझ से कुछ महत्वपूर्ण बातें तुम्हें बतानी थी। इसलिए गंभीरता से बोला, ''मेरे दो वि(ान मित्रों की राय में मैं जरा अनाड़ी हूँ, उनकी राय है कि यदि मैं थोड़ी सी कोशिश करूँ तो अभी भी मैं चतुर और व्यवहारिक व्यक्ति बन सकता हूँ। उन्होंने खुद चुनकर कुछ किताबें मुझे पढ़ने के लिए दीं, जिससे मैं थोड़ी और जानकारी हासिल कर सकूँ। अभी कल ही वे आये थे और दोनों ही मेरे पढ़ने के लिए अलग-अलग विषयों की दो मोटी पुस्तकें लाए थे।''

''और ये पुस्तकें किस विषय से सम्बन्धित है?'' तुमने चाव से पूछा।

मेरे अन्दर एक गर्व और स्व-महत्ता की तंरग उठी ''एक नक्षत्र विज्ञान है और दूसरी पराभौतिक शास्त्र है। ''मुझे लगा जैसे तुम्हारी रूचि बढ़ गई है।

''रोचक है। एक में सृष्टि के बाह्य जगत से सम्बन्धी सि(ान्तों का प्रतिपादन है तो दूसरा मस्तिष्क के आंतरिक ज्ञान से सम्बन्धित हैं।''

''सचमुच बड़े रूचिकर और जिज्ञासाजनक विषय हैं।'' लेकिन यह कहते हुए भी मेरा मन कुछ कमजोर पड़ा। फिर मैंने स्वीकार किया ''लेकिन साथ ही उन

विचारों की गहराई से इतनी कठिनाई अनुभव कर रहा हूँ कि सोचता हूँ क्या मैं इन्हें समझ भी सकूँगा।''

''लेकिन इन्हें समझने की जरूरत तुम्हें है भी? विज्ञान विषय की कोई भी किताब विज्ञान से संबन्धित अनेक क्षेत्रों से जुड़ी होती है और ये क्षेत्र अनगिनत होते हैं। तुम्हारे लिए इनका प्रयोग न तो आवश्यक है और न ही संभव। रत्ती भर भी नहीं।''

यह सुनकर मुझे राहत और सांत्वना तो मिली पर मेरे मन में अब भी यह चिंता थी कि मेरी मित्र-मंडली मुझे अनाड़ी और नासमझ ही समझेगी। ''तब मेरे लिए क्या रास्ता है?'' मैंने पूछा।

मेरे प्रति परवाह की चमक तुम्हारी आँखों में आई और उसी के साथ ईश्वरीय अधिकार से तुमने कहा ''मैं धुरी की 'कीली' हूँ, जहां से आंतरिक और बाह्य आकाश एक में मिलते है, उन दोनों का एक केन्द्रीय बिंदु। वे मुझमें परस्पर संपर्क, सक्रिय, गतिमान और मुझसे ही परावर्तित होते हैं। सृष्टि के आश्चर्यों में से यह भी एक है। मेरी तुम्हारे लिए प्रेम की याद, इस 'कील' पर रखे हुए दिए की बाती को जलाती है और खोजियों ;साधकोंद्ध को मुझ तक पहुँचने वाले पथ को प्रकाशवान करती है। इस बिंदु से निकलने वाला प्रकाश तुम्हें उन परीक्षणों ;प्रयोगोंद्ध में खो जाने से बचाएगा, जो तुम्हारे जीवन से संबन्धित नहीं है। यह प्रकाश, वह पथ भी प्रकाशित करेगा जो तुम्हें मुझ तक पहुँचाएगा''।

मेरा सिर चकरा गया। मैंने विनम्रता से पूछा ''इसे सरल ढंग से स्पष्ट कर सकते हो?''

तुमने कृपापूर्वक सहमति में सिर हिलाया। ''तुम रोज रात में सोने जाते हो?''

''हाँ, जरूर''

''ठीक है। जब तुम नींद की गोद में समा जाने वाले हो, उससे ठीक पहले की जागृति का एक क्षण या जब तुम नींद लेकर जागने वाले हो उस पहले क्षण की जागृति का वह एक क्षण होता है। क्या तुम जानते हो कि तुम में स्थित 'वह' क्षणांश उसी कालहीन अनन्त बिंदु का परावर्तन है जिस बिंदु की मैंने अभी बात की है''।

''नहीं। मैं यह नहीं जानता था''

''लेकिन न जानने पर भी तुम ऐसे बिंदु ;क्षंणाशद्ध के अस्तित्व के प्रति निश्चित नहीं हो?''

''होना तो चाहिए''। मैंने सावधानी से स्वीकार किया।

''इसी तरह, एक 'बिंदु' है जिसके माध्यम से आंतरिक तथा बाह्य आकाश मुझसे उत्पन्न हुए हैं और मुझमें ही मिल जाते है। ''मुझे लगा कि जो कुछ तुम कह रहे हो उसे समझने के लिए मुझे एक जीवनकाल से अधिक का समय चाहिए। वार्तालाप का आधार ज्यादा ठोस बनाने के लिए मैं असली बातचीत के विषय पर आया।

''लेकिन हम केवल पुस्तकों के अध्ययन की बात कर रहे थे।'' मैंने कहा।

तुमने, अवश्य यह जानते हुए कि मैं विषय बदल रहा हूँ, मुझे प्रेम से देखा। तुम कोमल स्वर मे कह उठे-

''पुस्तकीय ज्ञान पर मत जाओऋ

लोगों के कहने पर मत जाओ।

लेकिन हृदय-संकेत का अनुसरण करने में न हिचको,

जाओ जहां वह तुम्हें ले जाने को आतुर है।

और तुम्हें मिलेगा एक आश्चर्य।''

मैं आभारी था कि तुम मेरे स्तर तक नीचे उतर आए।

''कैसा आश्चर्य?'' मैंने पूछा।

तुमने अपनी अंतरंगता मुझे दी थी जिससे मैं तुमसे स्वतंत्र मन से कुछ भी पूछ सकता था।

''बता देने से आश्चर्य का रोमांच खत्म हो जाता है।''

''लेकिन उपरोक्त पंक्तियों के माध्यम से तुम मुझे क्या बताना चाहते थे?''

''ईमानदार रहो और किसी को, चाहे वह जितना भी बड़ा व्यक्ति क्यों न हो उसकी नकल मत करो। कब तक भला तुम दूसरों की आँख से देखोगे और दूसरों के कान से सुनोगे? आखिर कब तक तुम दूसरों के विचारों से प्रभावित और उनमें बहना चाहते हो? तो सीधा मेरी और उड़ान भरने के लिए अपने हृदय-पक्षी के पंख खोल लो।'' मेरी प्रश्नवाचक मुद्रा देख तुम कहते गए, ''तुम्हें एक कथा बताऊँ।

देखते हैं कि उसका अर्थ तुम समझ पाते हो या नहीं:

एक उत्साही व्यक्ति अपने विचारों को दूसरों के सामने बड़ी स्वतंत्रता से रख रहा था। लोग भी उसके विचारों की बड़ी तारीफ कर रहे थे। लेकिन लोग, उसका अंधानुकरण न करें, इसलिए उसने अपने मित्रों से कहा कि वे उसके मरने के बाद उसकी कब्र पर यह आलेख पट्टी पर लिखवा दे -

''मेरा अनुसरण करने वालों का अनुसरण मत करो''।

''वाह''।

''उस प्रतिभाशाली व्यक्ति की विनोद-प्रियता महान थी। पहले उसने चाहा कि आलेख में ''मेरे अनुयायियों से, सावधान।'' लिखा जाए लेकिन फिर अनुभव किया शायद यह बहुत कठोर उक्ति होगी।''

मैं ठगा सा रह गया। इस कहानी में मेरे लिए बहुत प्रेरणादायक संदेश है - मुझे दूसरों का अनुकरण नहीं करना चाहिए न ही दूसरों से मेरे अपने अनुकरण की आशा रखनी चाहिए। तुम्हारे पास आने का पथ अवश्य एकाकी है जिसे ईमानदारी से ही अपनाना होगा। तुम प्रसन्नता से मुस्कुराए, लेकिन चिढ़ाते हुए कहा ''तुम जनता द्वारा सम्मानित, कुशल वि(ान नहीं बनना चाहते?''

''कृपया मुझे तुम में गहरी आस्था रखने वाला, अनाड़ी ही रहने दो। मैं अब मेज पर रखी ये पोथियां नहीं पढ़ना चाहता। '' तुमने कहा ''तुम चाहो या ना चाहो, परन्तु जो बहुत पढ़ते है या अध्ययन करते है उनकी निन्दा मत करो। तुम जिस वस्तु के लिए दूसरों की निन्दा करते हो उसे अपने अन्दर आमंत्रित करते हो। मुझ तक पहुँचने के हरेक व्यक्ति के अलग-अलग मार्ग हैं। मनोरंजन के लिए या किसी व्यवहारिक सूचना के लिए पढ़ना ठीक है परन्तु वह पढ़ाई जिससे तुम या कोई भी, अधिक निःस्वार्थ बनने की प्रेरणा ग्रहण कर सके सर्वोत्तम है।''

इसे सुनकर मुझे राहत मिली। तुम्हारी सर्वव्यापी दयालुता ने मुझे आश्चर्य से भर दिया।

ऐसा लगा तुमने मेरी ऊपर उठती मन की स्थिति को भाँप लिया और जल्दी से मुझसे एक कदम आगे निकल गए ''परन्तु इससे भी अच्छा होगा कि मेरा अध्ययन करो। मेरे आलेख को न किसी तिथि की जरूरत है और न अक्षर की। मेरी भाषा, विश्व भाषा है यह भाषा अपने को वस्तुओं, स्वरों, स्वाद, स्पर्श सबके माध्यम

से अभिव्यक्त करती है। यदि तुम्हारे पास देखने की दृष्टि है तो तुम इसे हर तरफ देख सकते हो।''

''कृपया यह भाषा मुझे सिखा दो। हर तरफ तुम्हारा संदेश फैला हुआ देखना कितना सुन्दर होगा।''

और मैंने उसी पल यह तय कर लिया कि किताबें, अपने मित्रों को बिना यह बताए कि उन्होंने अनचाहें ढंग से मुझे कौन सा खजाना दिया है, सधन्यवाद लौटा दूँगा।

''असली पोथी'' पढ़ने हेतु तुम्हारी तैयारी और उत्सुकता देख मैं प्रसन्न हूँ। ''मुझ को अध्ययन'' करने से हृदय की समझ जाग्रत हो जाती है। सही समय पर इसके बाह्य जगत और साथ ही आंतरिक जगत-मन और पदार्थ की संरचना का, घटनाओं का वास्तविक महत्व उद्घाटित होगा। मैं वचन देता हूँ कि तुम या अन्य, कोई भी यदि 'मेरा अध्ययन' करेगा उसकी सही समय पर मैं सहायता करूँगा।''

फिर मुझे एक उत्साहव(र्ध)क दृष्टिकोण देकर तुम चले गए। तुम्हारे प्रत्येक आगमन का महत्व मेरी समझ से बहुत परे है। कभी-कभी मैं आँखें बंद कर लेता हूँ और शब्दों के चयन में उलझ कर रह जाता हूँ लेकिन आँसू की कुछ बूंदें निकल कर मेरे गालों पर ढुलक जाती है जैसे कह रही हो कि अभिव्यक्ति तक पहुँचने से पहले शब्द पिघल जाते है। फिर भी तुम्हारे शब्द ''मेरा अध्ययन करो'' - मेरे हृदय पर गहरे लिखे है।

ज्यादा से ज्यादा ''तुम्हारा अध्ययन'' करने का आशीष मेरा मार्गदर्शन करता रहे।

तुम्हारा कोई नाम नहीं

एक बार जब मैं बहुत ज्यादा शारीरिक पीड़ा की स्थिति में था तो गंभीरता से सोच रहा था कि कहीं ऐसा तो नहीं कि सर्वव्यापी होते हुए भी कभी-कभी तुम व्यक्ति की सहन शीलता का गलत आकंलन कर लेते हो। माँस पेशियों की ऐंठन और सूजन की पीड़ा झेलते, दिन यन्त्रणापूर्ण और रातें निद्राविहीन बन गई। अपने कष्ट और पीड़ा के कारण को जानने के लिए मैं अपने अतीत को टटोल रहा था, कि जानबूझकर या अन्जाने में, मुझसे किसी को चोट तो नहीं लगी या सीमा का अतिक्रमण तो नही हुआ। लेकिन जहां तक मैं याद कर सका, मैंने किसी को नुकसान नही पहुँचाया था, यहां तक कि अपने विचारों में भी नही। सच तो यह था कि मैं सदा ''अच्छा व बच्चा'' रहा था।

''हर क्षण उत्तर की खोज में गहराई से सोचना'' मैंने अपने आपसे कहा ''ऐसे समय में क्या स्थिति को दार्शनिक अंदाज में देखना, भला अच्छी बात है?''

मैंने हर किसी से कह दिया कि मुझे अकेला छोड़ दो क्योकि हर कोई मुझे ऐसी दशा में देखकर परेशान और दुखी हो जाता था। इस तरह अब मैं अपने कष्टों और भयों के साथ अकेला था। मैंने करवट ली, आँखें बंद की और आँसू बह चले। मैं जोरों से रोना, सिसकना चाहता था और जोर से कराह उठा ''ओह! ओह''!

अपने तकिए के नीचे हाथ डालकर रूमाल टटोलने लगा। रूमाल वहां नही था। मैंने अपनी जेबें टटोली लेकिन नहीं मिला। अब पीड़ा में झुझंलाहट भी आ मिली।

इतने में ''मेरा रूमाल प्रयोग कर लो'' मैंने तुम्हरी परिचित वाणी सुनी।

मैंने जैसे आँखें खोली, तुमने एक सफेद रूमाल मेरी ओर बढ़ा दिया। जड़ होकर मैं बस तुम्हें देखता रह पाया। ''लो'' तुमने कोमलता से जिद की, अभी तक तुम रूमाल ही तो ढूँढ रहे थे?''

''लेकिन मैं तुम्हें नहीं बुला रहा था'' मैंने कर्कश उत्तर दिया ''मैं तो केवल अपनी पीड़ा समेट रहा था। ''

''सांसारिक पिता भी अपने प्रिय बीमार बेटे के पास जाने के लिए

आमंत्रण को प्रतीक्षा नहीं करता और तुम मुझसे अपनी पुकार की प्रतीक्षा करने की आशा करते हो''?

तुम्हारे अपनेपन भरे उस दृष्टिपात ने मेरा हृदय बींध दिया और मेरा सब्र टूट गया। आँखों से नई आँसू की धारा बह चली- पर अब ठंडी अश्रुधारा क्योकि ये खुशी के आँसू थे और मैंने उन्हें उसी रूमाल, तुम्हारा प्रतीक 'प्रेममय-उपहार', से पौंछ डाला।

लेकिन कहते है कि प्रीत की रीत भी निराली होती है कि मिलन के क्षण भी, उससे जो सबसे ज्यादा प्रिय है, - शिकायत रहती है। जो पीड़ा मैंने झेली थी उसने मेरे मन और हृदय को प्रभावित किया था। जब पीड़ा बढ़ती है तो तर्क की चिड़िया उड़ती है।

''पिछले तीन दिनों से मैंने नित्य-प्रार्थना भी नही की है'' मैंने शिकायती लहजे में सहज बनते हुए कह दिया।

''बहुत खूब।'' तुमने प्रफुल्लता से उत्तर दिया।

''उस नियम और समय से तुम्हारा नाप जप अब तक जैसा करता था, अब नहीं कर सकूँगा।'' कहते हुए मैंने मुँह फेर लिया।

''अति सुन्दर।'' तुमने कहा

तुम्हारे ऊपर अपेक्षित प्रभाव न होते देख मैं भौंचक्का हो गया ''मजाक करते हो?''

''नहीं बल्कि मैं तो प्रसन्न हूँ क्योकि मेरा कोई विशेष 'नाम' नही है और न पूजा-प्रार्थना की कोई निश्चित विधि ही है। मैं 'एकमेव अनाम' हूँ । सच तो यह है कि मेरा नाम अनिर्वचनीय है। सभी नाम मेरे मौन में डूब जाते है, इसलिए कोई भी प्रेम भरी आवाज जो गहरी हृदय इच्छा से लगाई जाए, वह मेरा नाम हो जाता है। वह सीधा मेरे हृदय तक पहुँचता है और दर्दनिवारक लेप की भाँति मेरी उपस्थिति जो कष्ट में है उनकी ओर बह उठती है। अन्य दूसरे अवसरों पर यही उपस्थिति उल्लास से भरी होती है।''

''तुम्हारे कहने का अर्थ है कि तुम्हारा मेरे पास आगमन मेरी पुकार पर निर्भर नही है?''

''मैं किसी चीज पर न तो निर्भर हूँ और न बंधा हूँ। इसलिए मैं आमंत्रित

या अनामंत्रित आगमन के लिए स्वतंत्र हूँ।''

जबकि मैं कष्ट में था, फिर भी हँस पड़ा। तुम्हारे शब्दों ने, तुम्हें किसी भी नाम से, किसी भी समय पुकारने के लिए मुझे स्वतंत्रता दे दी। ''केवल ध्वनि का महत्व नही है बल्कि तुम्हारे ऊपर पूरी आस्था का प्रश्न है''। मैंने समझना चाहा और कहा।

''अब तुम सचमुच एक अच्छे बच्चे हो''।

सचमुच अब मुझे बहुत आराम और मुक्ति की अनुभूति हुई क्योकि तुम्हारे शब्दों ने मेरे हृदय और मस्तिष्क के बोझ को कम कर दिया था। ''लेकिन पहले तुम भ्रमित क्यो हो गए थे? '' तुमने पूछा ''क्या मुझे आध्यात्मिक सत्यों का व्यापारी समझ लिया था? मैं सदा वही हूँ - एकमेव, जो पूर्ण स्वतंत्र, स्वाभाविक और पूरी तरह प्रतिब(है। इस स्थिति को तुम क्या कहोगे?''

''अपने ही स्वभाव को परिभाषित करने की मुझसे आशा रखते हो? यदि ऐसा है तो जबकि तुम सही हो फिर भी शायद पहली बार तुमने किसी के मूल्यांकन में अति की है।'' मैने कहा।

''अपने स्वयं के बनाए अनुशासनों से मुक्ति ;सहजताद्ध, अवश्य तुम्हें मेरे नजदीक लाएगी। जब कोई दबाव न हो, योजना न हो, परियोजना न हो। ऐसी दशा में तुम उसी तरह झुक जाते हो जैसे हवा के वेग से पेड़ झुक जाते है और तुम्हारे विचारों की जड़े, अनुभवों की दिशा सरलता से मुझमें स्थित उसी संतुलन बिंदु तक पहुँच जाती है। सहजता तुम्हें मेरे नजदीक, पूजा-पाठ या प्रार्थनाओं की अपेक्षा, ज्यादा से ज्यादा ला सकती है। तुम अपने आप को नियमों में क्यों बांधते हो? विधियों या परंपराओं में कोई बुराई नहीं है, लेकिन एक समय आता है जब ये वस्तुएं कहीं पीछे छूट जाती है जिससे कि तुम्हारा मुझ तक प्रवाह सरल हो जाए।''

''तुम्हारे कहने का अर्थ है कि लोग पूजा-पाठ छोड़ दे और प्रार्थनाओं की पुस्तकें फेंक दें''?

तुमने मेरी तरफ ऐसे देखा जैसे तुम्हें मेरी समझ पर तरस आ रहा हो

''तुमने मेरे कहने का गलत अर्थ लगाया है। यदि लोग अपनी प्रार्थना की पुस्तक फेंक भी दें और पूजा-पाठ छोड दे, तो भी वें इसके किसी नए विकल्प को अपना लेंगें जो उससे भी ज्यादा लुभावना होगा। मेरा सम्बन्ध हर प्राणी से व्यक्तिगत

रूप से है और मैं सबकी जरूरत देखता हूँ। क्या चाहते हो कि मैं उपदेशक या शिक्षक बन जाऊँ? क्या इसलिये तुम मुझसे ऐसे दो टूक जबाव की खोज कर रहे हो? ''

''नहीं, नहीं। पर क्या मैं एक दोस्त की तरह यह जानकारी नहीं ले सकता कि तुमने मेरे अन्दर क्या जाग्रत कर दिया? ''

''क्यो नहीं? लेकिन यह जानकारी बिना भय, बिना भ्रान्ति ;गलतफहमीद्ध, बिना उपदेश देने का अधिकार पाने की इच्छा से रहित होना चाहिए। ''

''यह सब मुझे संसार में 'होने' मे सहायक तो हो सकता है पर तुम्हारे बिना नही।''

तुम मुस्कुराए, ''थोड़ी ही सही समझना तो तुमने शुरू कर दिया है''।

''लेकिन मूल प्रश्न, जिसे तुमसे मैंने अभी कहा नहीं है उससे मैं परेशान हूँ -

''संसार मे ऐसा कष्ट क्यों है?

कष्ट, क्यों जरूरी है?''

''क्योंकि तुम इसे चाहते हो।''

मैं आश्चर्य मे पड़ गया ''दो दिन से दर्द के मारे मैं सो नही सका हूँ। क्या यह जरूरी था? क्या यह मेरे भले के लिए था? क्या मैं इसे पाना चाहता था?''

तुमने मुझे शांत करूणाभरी दृष्टि से देखते हुए कहा ''साधारणतया तुम अपने जाग्रत स्वप्नों, अपनी इच्छाओं को पूरा करने के लिए रोज सुबह नींद से जागते हो। मैं जाग्रतिकार हूँ। क्या तुम्हारे दर्द ने तुम्हें जीवन के एक नए आयाम के प्रति जाग्रत नहीं किया है? क्या तुम यह नहीं मानोगे कि ऐसा बदलाव, दृष्टिकोण का यह फैलाव जरूरी नहीं था? और फिर मैं तुम्हें यहां सांत्वना देने नहीं आया हूँ?''

मेरे पास इसका कोई उत्तर न था। सब सच था। फिर भी एक संदेह सिर उठाता रहा, जिसे कहने से मैं बच रहा था, क्या यह भी जरूरी था कि मेरा दर्द इतना भीषण और उग्र हो?

बिना मेरे बोलकर पूछे गए इस प्रश्न का उत्तर सीधे तुमने मेरे ह्रदय मे दिया, ''क्या सोचते हो यदि और कोई उपाय होता तो मैं यूं तुम्हें कष्ट भोगने देता?''

''मेरा तात्पर्य यह नहीं था लेकिन में नहीं जानता कि इस प्रकार का कष्ट

क्यो जरूरी है? अतः मुझे अपना प्रश्न दुहराने की अनुमति दोः सच! जीवन में इतने कष्ट क्यो अनिवार्य है?''

''क्योकि तुम इन्हें चाहते हो?''

''यह कैसे कह सकते हो? यह कैसे हो सकता है?''

''दुख और कष्ट, जागरूकता के लिए एक तरह से जरूरी है जो करूणा के विधान से आता है। यह हरेक मे स्थित सत्य की चेतना को संतुलित ;दूसरों के प्रति सहानुभूति की ओरद्ध तथा त्वरित करती है ''।

''यह कैसे सम्पन्न होता है? मैं अब भी नही समझा?''

''प्रत्येक क्षण का आश्चर्य स्वयं को जीवन मे लगातार अभिव्यक्त करता रहता है। भ्रम के अस्थायित्व में, यही सौन्दर्य का प्रवाह है। इन सबका लक्ष्य, तुम्हें सत्य, सदा नए सौन्दर्य - जो मैं हूँ, की ओर आने का आमंत्रण है। लेकिन जिस क्षण इस प्रणाली को कोई विकृत करता है, तो किसी न किसी प्रकार के कष्ट की प्रक्रिया स्वाभाविक रूप से शुरू हो जाती है। यह एक उपहार है, अभिशाप नहीं।''

''लेकिन क्या गलतियां करना मानवीय स्वभाव नही है?''

''इसलिए कष्ट सहना भी मानवीय है। ऐन्द्रिक सुख अपने आप में बुरे नहीं है, मैं मित्रवत् भी हो सकते है। भ्रम तो मेरा सहभागी है। यह तो आसक्ति है जो जीवन को विकृत और अवरू(कर देती है। जितना ही तुम इनसे चिपकने से मुक्त रहोगे, उतना कम तुम्हें कष्ट होगा। फिर से यह संतुलन का प्रश्न है। स्वादिष्ट व्यजंन सुखदायी हो सकता है लेकिन तुम अगर इसे जरूरत से ज्यादा खा लोगो तो पेचिश हो सकती है। तुम कष्ट में पड़ जाओगे और दोष मुझे दोगे।''

''इस पर भी तुम हमें क्षमा करने और जागृत करने, कभी भव्य रूप से कभी कष्ट से, आते हो। क्या तुम्हारा यही तात्पर्य है? लेकिन इस बार मेरी यातना सचमुच भयानक थी? ''

''लेकिन याद रखो, शारीरिक कष्ट कितना भी ज्यादा हो, मानसिक और आध्यात्मिक पीड़ा की बराबरी नही कर सकता। लेकिन यहां भी मेरी करूणा का साम्राज्य है क्योकि मानसिक और शारीरिक कष्ट उग्रतर होकर ;बढ़करद्ध मेरी कृपा की, सूक्ष्म ;कमद्ध और वृहदतर ;ज्यादाद्ध प्राप्ति का कारण बनते हैं तथा पीड़ित व्यक्ति मेरी उपस्थिति का अनुभव कर सकते है।

मैंने कष्ट के विषय में बहुत ज्यादा सुन लिया था और इसके, अपनी कल्पना से भी बड़े, रूप को मैं अभी भी ग्रहण नही कर पा रहा था। मैंने मुस्कुराते हुए उल्हाना दिया, तुम बहुत छोटे से गमले में बहुत बड़ा वृक्ष लगा रह हो''।

तुमने आश्चर्य प्रकट किया ''तुम्हीं ने तो यह विषय उठाया था, मैंने नहीं।

अतः इसे यही समाप्त करो। हां तुम्हारा रूमाल तो मैं तकिए पर पड़ा देख रहा हूँ। तुमने देखा नही? इसलिए क्या अब मेरा रूमाल मुझे लौटाओगे?''

मेरा दिल डूब गया, ''सचमुच तुम्हें रूमाल वापिस चाहिए?''

हां मुझे किसी और के लिए इसकी जरूरत पड़ सकती है।''

''लेकिन तुम्हारे पास तो इसके भण्डार के भण्डार हैं।''

''यह सच हो सकता है लेकिन क्या तुमने अब तक यह अनुभव नहीं किया है कि मैं पूर्ण मित्तव्ययी, अर्थशास्त्री ;बनियाद्ध हूँ? और सर्वश्रेष्ठ एकमेव दयावान भी।'' मेरा मन तुम्हारी इच्छा के पालन हेतु तुम्हारा रूमाल लौटा देने का हुआः मैंने ऐसा ही किया। लेकिन तुम्हारे जाने के बाद मुझे ज्ञान हुआ कि तुम्हारी उपस्थिति के प्रबल प्रभाव या वह जो भी हो, के कारण मैंने तुम्हें तुम्हारे रूमाल की जगह अपना रूमाल दे दिया है और तुमने कुछ नहीं कहा था। यह ऐसा ही था, जैसे तुमने मुझे उल्लासमय विश्रान्ति देकर मेरी शारीरिक पीड़ा ले ली हो।

कैसी विनम्रता, कैसी मानवता, कैसी भगवत्ता, कैसी परात्परा, सचमुच तुम्हारा कोई नाम नहीं है।